सत्तास्वरूप

पण्डित भागचन्द छाजेड़

द्वितीय संस्करण : ३२००
२४ फरवरी १९८८



मूल्य : **दो रुपए पचास पैसे**



मुद्रक :
ए. के. लियोग्राफर्स
टैगौर गार्डन
दिल्ली

सत्तास्वरूप

लेखक :

पण्डित भागचन्द्रजी छाजेड़

अनुवादक :

ब्र. पं. जतीशचन्द्र जैन शास्त्री

मनावद (म० प्र०)

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४ बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रकाशकीय

पण्डित भागचन्दजी छाजेड कृत 'सत्तास्वरूप' ग्रंथ का प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

इस पुस्तक में अरहन्त भगवान का स्वरूप, सर्वज्ञ सत्ता की सिद्धि तथा मोक्षमार्ग सम्बन्धी अनेक प्रयोजनभूत विषय है जो पाठको को तत्वज्ञान की प्राप्ति में अत्यन्त सहायक होंगे। यह कृति मूल ढूंढारी भाषा में लिखी गई है, जिसका ब्र० पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री ने सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद कर इसे जन सामान्य के लिए उपयोगी बना दिया है। 'सत्ता स्वरूप' नामक इस पुस्तक पर आध्यात्मिक सत श्री कानजी स्वामी के भी मार्मिक प्रवचन हुए है, जिसे 'मुक्ति का मार्ग' के नाम से प्रथक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक को जन-जन तक अल्प मूल्य में पहुचाने के उद्देश्य से पुस्तक की कीमत कम करने हेतु श्री दिगम्बर जैन महिला मुमुक्षु मण्डल, फिरोजाबाद की ओर से ९५०) रु० तथा आदर्श ग्लास वर्क्स हस्ते-श्री सुरेशचन्द्र जी जैन, फिरोजाबाद की ओर से ५००) रु० का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। तदर्थ हम उनके आभारी है।

इस पुस्तक को ऑफसैट पद्धति से ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित कराया गया है, इसके लिए प्रेस के मालिक श्री अनिल सचदेव का भी आभार मानता हूँ। मुद्रण, कागज एवं बाइण्डिग व्यवस्था के लिए श्री अखिल बंसल भी बधाई के पात्र हैं। इस पुस्तक के माध्यम से आप सभी अपना आत्म कल्याण करे, इसी भावना के साथ।

—नेमीचन्द पाटनी
मंत्री

श्री वीतरागाय नमः

सत्तास्वरूप

मंगलमय मंगलकरण वीतराग विज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान ।।

इस जीवको सुख इष्ट है, वह सुख सर्व कर्मोंके नाशसे प्राप्त होता है, जोरसे प्रकट नहीं होता। कर्मोंका नाश चारित्रसे होता है और वह चारित्र प्रथम सम्यक्त्व अतिचार रहित हो तथा चारों अनुयोगोंके द्वारा मोक्षमार्गमे प्रयोजनभूत वस्तुका संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय आदि रहित यथार्थ ज्ञान हो तब होता है। तब प्रमाद-मद आदि सब दूर हो जाते है और शास्त्रोंका श्रवण, धारण, विचारणा, आम्नाय, अनुप्रेक्षा सहित अभ्यास करता है; इसलिये सर्व कल्याणका मूल कारण एक आगमका यथार्थ अभ्यास है। इस संसार-वनमे परिभ्रमण अनादिकालसे है इसलिये जीवनमें शास्त्राभ्यासका अवसर मिलना महान दुर्लभ है, क्योंकि संसारमें बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्यायमे व्यतीत होता है, वहाँ केवल एक स्पर्शन इन्द्रियका ही किंचित् ज्ञान है, तथा दो इन्द्रिय आदि असैनी पंचेन्द्रिय पर्यंतको तो विचार करनेकी शक्ति ही नहीं है। तथा नरकगतिमें शास्त्राभ्यास करनेका समय ही नहीं, किसी जीवको पूर्ववासनासे अन्तरंगमें हो तो कदाचित् हो; तथा देवगतिमें नीचजातिके देव हैं, उन्हें जो विषय-सामग्री मिली है उसीमें वे अत्यन्त आसक्त हैं; उन्हें तो धर्मवासना ही उत्पन्न नहीं होती, और जो उच्च पदवी वाले देव हैं उन्हें धर्मवासना उत्पन्न होती है। विशेषरूप से मनुष्यादि पर्यायोंमें धर्मसाधनकी योग्यतासे ही ऐसे पदकी प्राप्ति होती है। तथा मनुष्य-

पर्यायमें अनेक जीव तो लब्ध्यपर्याप्तक है, उनकी आयु श्वासके अठारहवां भाग मात्र है, इसलिये वे जीव तो पर्याप्ति पूर्ण नहीं करते और कदाचित् अल्पआयु हो तो गर्भमें या बाल्यावस्थामें ही मरण हो जाता है तथा दीर्घआयु हो तो शूद्र आदि नीच कुल में उत्पन्न होते हैं और उच्च कुल भी मिल जाये तो इन्द्रियोंकी परिपूर्णता या शरीरकी निरोगता का मिलना दुर्लभ है और उससे अच्छे नगरादिमें उत्पन्न होना दुर्लभ है, वहां भी धर्म की वासनाका (रुचिका) होना महा दुर्लभ है। तथा वहां भी सच्चे देव-शास्त्र-गुरुका सत्समागम मिलना महा दुर्लभ है, वहां भी पूजा-दान-शील संयमादि व्यवहारधर्मकी वासना तो कदाचित् उत्पन्न हो सकती है परन्तु जिससे अनादि मिथ्यात्वरोग नाश हो ऐसे निमित्तका मिलना उत्तरोत्तर महा दुर्लभ जानकर इस निकृष्ट कालमें जिनधर्मका यथार्थ श्रद्धानादि होना तो कठिन ही है, परन्तु तत्त्वनिर्णयरूप धर्म है वह बाल-वृद्ध, रोगी-निरोगी, धनी-निर्धन, सुक्षेत्री-कुक्षेत्री इत्यादि सर्व अवस्थाओंमें होने योग्य है, इसलिए जो पुरुष अपने हितके इच्छुक है उनको सर्वप्रथम ही तत्त्व-निर्णयरूप कार्य करना योग्य है। इसीलिए कहा है कि :—

* न क्लेशो न धनव्ययो न गमनं देशान्तरे प्रार्थना।
केषांचिन्न बलक्षयो न न भयं पीडा न परस्यापि न॥
सावद्यं न न रोगजन्मपतनं नैवान्यसेवा न हि।
चिद्रूपस्मरणे फलं बहु कथं तन्नाद्रियन्ते बुधा॥

(तत्त्वज्ञानतरंगिणी अ. ४ श्लोक १)

तथा जो तत्त्वनिर्णयके सन्मुख नहीं हुए है उनको उलाहना दिया है।

* अर्थः—इस परमपावन चिद्रूपके स्मरण करनेमे न किसी प्रकारका क्लेश उठाना पड़ता है, न धनका व्यय, देशान्तरमें गमन, और दूसरेसे प्रार्थना करनी पड़ती है। किसीप्रकारकी शक्तिका क्षय, भय, दूसरेको पीड़ा, पाप

÷ साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइ ।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भवभयविहुणा ।।
(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २०)

वहां जो शास्त्राभ्यासके द्वारा तत्त्वनिर्णय तो नहीं करते और विषय-कषायके कार्योंमें ही लीन हैं वे अशुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि हैं और जो सम्यक्त्वके बिना पूजा, दान, तप, शील, संयमादि व्यवहार-धर्ममें लीन हैं वे शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि हैं। जबकि तुम्हें भाग्योदयसे मनुष्यपर्याय मिली है तो सर्वधर्मका मूल कारण सम्यक्त्व और उसका मूल कारण तत्त्वनिर्णय तथा उसका मूल कारण शास्त्राभ्यास वह अवश्य करने योग्य है, परन्तु जो ऐसे अवसरको व्यर्थ खोते हैं उनपर बुद्धिमान करुणा करते हैं; कहा है कि—

* प्रज्ञैव दुर्लभा सुष्टु, दुर्लभा सान्यजन्मने ।
तां प्राप्य ये प्रमाद्यन्ति ते शोच्याः खलु धीमताम् ।।१४।।
(आत्मानुशासन)

इसलिये जिनको सच्चा जैन बनना हो उनको शास्त्रके आश्रयसे तत्त्वनिर्णय करना योग्य है, परन्तु जो तत्त्वनिर्णय नहीं करते

रोग, जन्म-मरण और दूसरेकी सेवाका दुःख भी नहीं भोगना पड़ता इसलिये अनेक उत्तमोत्तम फलोंके धारक भी इस शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेमें हे विद्वानों ! तुम क्यों उत्साह और आदर नहीं करते ? यह नहीं जान पड़ता ।

÷ अर्थः—स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग मिलने पर भी जो जीव धर्म-वचनोंको नहीं सुनते वे धीठ हैं और उनका दुष्ट चित्त है। अथवा जिस संसारभयसे तीर्थंकरादि डरे उस संसारभयसे रहित हैं, वे बड़े सुभट हैं।

* अर्थः—इस संसारमें विचाररूप बुद्धि होना ही दुर्लभ है, और परलोकके लिए बुद्धि होना तो अति दुर्लभ है। ऐसी बुद्धि प्राप्त होने पर भी जो प्रमाद करते हैं उन जीवोंके प्रति ज्ञानियोंको शोच होता है।

और पूजा, स्तोत्र, दर्शन, त्याग, तप, वैराग्य, संयम, संतोष आदि सर्व कार्य करते हैं सो उनके सर्व कार्य असत्य हैं। इसलिये आगमका सेवन युक्तिका अवलम्बन, परम्परा गुरुओंका उपदेश, स्वानुभव द्वारा तत्वनिर्णय करना योग्य है। वहाँ जिनवचन है वह चारो अनुयोगमय है उसका रहस्य जानने योग्य है। जिनवचन तो अपार हैं उनका पार तो गणधर देव भी नही पा सके, इसलिये उनमें जो मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत वस्तु है उसे तो निर्णय करके अवश्य जानना। कहा है कि–

* अन्तो णत्थि सुईणं कालो थोओवयं च दुम्मेहा।
तं णवर सिक्खियव्वं जि जरमरणक्खयं कुणदि ॥९८॥
(पाहुड-दोहा)

वहां मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत वस्तुए क्या-क्या है वह बतलाते है। जिनधर्म-जिनमत, देव-कुदेव, गुरु-कुगुरु, शास्त्र-कुशास्त्र, धर्म-कुधर्म-अधर्म, हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्व-कुतत्व, मार्ग-कुमार्ग-अमार्ग, सगति-कुसगति, ससार-मोक्ष, जीव-अजीव, आस्रव, सवर, निर्जरा, बध, मोक्ष, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, वस्तु, द्रव्य, गुण, पर्याय, द्रव्यपर्याय, अर्थपर्याय, व्यंजनपर्याय, असमानजाति, विभावद्रव्य व्यजनपर्याय, स्वभाव व्यंजनपर्याय स्वभावअर्थपर्याय, शुद्ध अर्थपर्याय, अशुद्ध अर्थपर्याय, सामान्यगुण और विशेषगुण इसप्रकार सत्ताका निश्चय करके अब उनका स्वरूप कहते हैं।—

वहाँ सर्वज्ञके व्यवहार-निश्चयरूप दो प्रकारकी कथनीके आश्रित दो जातिके गुण पाये जाते है, तथा बाह्य-अभ्यन्तररूपसे गुण दो प्रकारके हैं, अथवा निःश्रेयस, अभ्युदयके भेदसे गुण दो प्रकारके है, तथा वचन विवक्षासे सख्यात गुण पाये जाते हैं और वस्तुस्वरूपकी अपेक्षासे अनंतगुण पाये जाते हैं। सो उनको सम्यार्थज्ञान द्वारा यथावत्

---

* अर्थ:—श्रुतियोका अन्त नही है, काल थोडा और हम दुर्बुद्धि है इसलिए केवल वही सीखना चाहिए जिससे तू जन्म-मरणका क्षय कर सके।

जाननेसे स्वरूपका भास होगा, क्योंकि यह जीव अनादिकालसे संसारमें परिभ्रमण करता हुआ मिथ्याबुद्धिसे पर्यायके प्रपंचको सच्चा जानकर मग्न हुआ प्रवर्तता है, इसलिए दुःखकी पीड़ा तो बनी रहती है,-उससे तड़फ-तड़फकर अनेक उपाय करता है, किन्तु जो आकुलता इच्छारूप दुःख है वह अंशमात्र भी नहीं मिटता। जिसप्रकार मिर्गीका रोग कभी तो बहुत प्रगट होता है कभी थोड़ा प्रगट होता है और रोग अन्तरंगमें सदा बना रहता है; जब रोगीके पुण्योदय काललब्धि आये, अपने उपायोंसे सिद्धि नहीं हुई जाने, उन्हें झूठा माने तब सच्चा उपाय करनेका अभिलाषी होता है कि अब मुझे सच्चे उपायका निश्चय करके जिससे रोग मिटे वह औषधि लेना है। वहाँ पहले जो उपाय किया था वह सच्चा नहीं था, सो पश्चात् सच्चा उपाय करके जिसका रोग मिट गया हो उस वैद्यसे सच्चा उपाय जाना जाता है, क्योंकि जिसको रोग, औषधि, पथ्य और निरोगताका स्वाश्रित सम्पूर्ण ज्ञान हो वही सच्चा वैद्य है, और वही औरोंको भलीभांति बतलाता है। इससे जिनको मिर्गीके दुःखसे भय उत्पन्न हुआ हो और सचमुच रोगसे पीड़ित हो, तथा सच्ची औषधि वैद्यके द्वारा बतलानेसे आयेगी ऐसी परीक्षाबुद्धि उत्पन्न हुई हो, तथा जिसको मिर्गीका रोग मिटा है उसकी सूरत देखकर उत्साह उत्पन्न हुआ हो वह इन चार अभिप्राय सहित वैद्यके घर जाता है। वहां प्रथम तो वैद्यकी आकृति, कुल, अवस्था, निरोगताका चिह्न एवं प्रकृति आदि उन सबको प्रत्यक्ष जानता है अथवा अनुमानसे या किसीके कहनेसे सम्यक् प्रकारसे निश्चय करता है तब यह अनुभव होता है कि परमार्थसे पक्का भला करने वाला सच्चा वैद्य यही है। तब स्वयं उससे अपनी सारी स्थिति निष्कपट होकर कहता है कि मुझे इसप्रकारका रोग हुआ है तथा मुझमें रोगकी यह अवस्था होती है अब इस रोगके मिटनेका जो सच्चा उपाय हो वह आप बतलाये। तब वह वैद्य उसे रोगसे दुःखी—भयवान जानकर रोग दूर होनेका सच्चा यथार्थ उपाय बतलाता है। उसे सुनकर औषधि लेना प्रारम्भ करता है। वैद्यको अपना रोग बतलाकर तथा

उसका उपाय जानकर पक्का आस्तिक्य लाता है। जबतक अपना रोग दूर न हो तबतक उस वैद्यका सेवक-अनुचर होकर वर्तता है। नाड़ी दिखलाने, औषधि लेने, दुःख-सुख अवस्थाकी पूछताछ करने, खान-पान आदि पथ्यका विधान पूछने तथा रोग दूर हुआ है इसलिए अपने धैर्य, हर्ष व आराम बतलाने, उनकी मुद्रा देखने इत्यादि प्रयोजनार्थ बारम्बार वैद्यके घर आया करता है तथा उनकी सुश्रूषा-पूजा किया करता है और वे औषधि बतलावें उसे विधिपूर्वक लेता है, तथा पथ्यादिककी सावधानी रखता है। जब उसका रोग दूर होगा तब उसे सुखअवस्था प्राप्त होगी। इसप्रकार निरोग होनेका मूल कारण सच्चा वैद्य सिद्ध हुआ, क्योंकि वैद्य बिना रोग कैसे दूर हो और रोग दूर हुए बिना सुखी कैसे हो? इसलिये प्रथम अवस्थामें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव त्रिदोषरहित स्वरूपका निर्णय करना योग्य है। वहां रोगका निदान, रोगका लक्षण, चिकित्साका पक्का ज्ञान हो और जिसे राग-द्वेषरूप स्वार्थ न हो वह सच्चा वैद्य है, परन्तु वैद्यके इन गुणोंको तो नहीं पहिचाने और औषधिकी जाति तथा नाड़ी देखना ही जानता हो इत्यादि गुणोंको देखकर यदि वह विषरूप औषधि लेगा तो उसका बुरा ही होगा, क्योंकि जगतमें भी ऐसा ही कहते हैं कि अजान वैद्य यम के बराबर है। जबतक सच्चे वैद्यका सम्बन्ध न हो तबतक औषधि न लेना तो अच्छा ही है परन्तु आतुर होकर अप्रमाणिक वैद्यकी औषधि लेनेसे अत्यन्त दुःख उत्पन्न होता है। वह आप अपने चित्तमें विचार करके देखो, जिसको इलाज करवाना हो वह प्रथम वैद्यका निर्णय करता है। वहां प्रथम तो दूसरेके कहनेसे या अनुमानसे उसके स्वरूपका निश्चय करके वैद्यके प्रति आस्तिक्य लाता है, फिर उसकी कही हुई औषधिका सेवन करता है तथा अपने रोगकी मंदता हो जाने पर वह सुखी होता है और तब स्वानुभवजनित प्रमाणके द्वारा वैद्यका यथार्थपना भासित हो जाता है।

उसीप्रकार इस जीवको आकुलता चिन्ह सहित अज्ञानजनित

इच्छा नामक रोग लग रहा है, इसलिए किसी समय तीव्र आकुलता होती है, किसी समय मन्द आकुलता होती है परन्तु यह इच्छा नामक रोग सदा बना ही रहता है, जब किसी भव्यजीवको मिथ्यात्वादिकके क्षयोपशमसे तथा भली होनहारसे काललब्धि निकट आती है तब अपने किये हुये विषयसेवनरूप उपायोंसे सिद्धि नहीं हुई ऐसा जानकर उसे असत्य मानता है तब सत्य उपायका निश्चय करके अपना इच्छा नामक रोग जिसप्रकार मिटे उसप्रकार सत्य धर्मका साधन करना चाहिये। वहां सत्यधर्मका साधन तो इच्छारोग मिटानेका उपाय है, सो तो जो पहले स्वयं इच्छारोग सहित था और फिर सत्यधर्मका साधन करके जिसे उस इच्छारोगका सर्वथा अभाव हुआ हो उसके बतलाये अनुसार जाना जाता है। क्योंकि राग, धर्म, सच्ची प्रवृत्ति, सम्यक्‌ज्ञान व वीतरागदशारूप निरोगता उसका आद्योपान्त सत्तास्वरूप स्वाश्रितरूपसे उसीको भासित होता है, तथा वही अन्यको बतलानेवाले हैं, इसलिये जिनको अज्ञानजनित इच्छा नामक रोगसे भय उत्पन्न हुआ हो व सच्चा रोग भासित हुआ हो व उस रोगको मिटानेवाली सच्ची धर्मकथा श्री सर्वज्ञ वीतराग भगवानकी बतलाई आयेगी तथा जिनको यह इच्छा नामक रोग मिटा है उनकी मूर्ति देखनेसे उत्साह उत्पन्न हुआ हो उसी जीवने रोगीवत् भगवान्‌रूप वैद्यका आश्रय लिया व याचककी भांति शांतरसकी रसिकतासे ऐसे शांतरसकी मूर्ति के दर्शनका प्रयोजन लेकर काय-वचन-मन-नेत्र आदि सर्व अंगमें यथावत् हाव-भाव-कटाक्ष-विलास-विभ्रम हो जाते हैं तदनुसार चार जातिरूप अपने परिणामोंको बनाकर जिनमन्दिरमें आता है, वहां प्रथम तो आगे अन्य सेवक बैठे हों उनसे सुदेवका स्वरूप पूछता है व अनुमानादिकसे निर्णय करता है तथा आम्नायके लिए दर्शनादि करता जाता है, तब स्वयं सेवक बनता है, तथा उनका उपदेशित मार्ग ग्रहण करता है, तथा उनके कहे हुए तत्त्वोंका श्रद्धान करता है जबकि पहले आगम श्रवण या अनुमानादिकसे स्वरूपका सच्चा निर्णय हो चुका हो। परन्तु यदि उसे स्वरूपका सच्चा निर्णय नहीं हुआ, तथा विशेष साधनेका यथार्थ ज्ञान

नहीं हुआ, तो वह निर्णयके बिना किसका सेवक होकर दर्शन व जाप्य करता है ? तथा कोई कहता है कि हम तो सच्चे देवको जानकर कुलके आश्रयसे व पंचायतके आश्रयसे पूजा-दर्शनादि धर्मबुद्धिपूर्वक करते हैं उससे कहते हैं कि :—

वे देव तो सच्चे ही है, परन्तु तुम्हारे ज्ञानमें उनका सच्चारूप प्रतिभासित नही हुआ, जिसप्रकार तुम पंचायत व कुलादिकके आश्रयसे धर्मबुद्धिसे पूजादिकके कार्योंमे वर्तते हो उसीप्रकार अन्यमतावलम्बी भी धर्मबुद्धिसे व अपनी पंचायत या कुलादिकके आश्रयसे अपने देवादिककी पूजादि करते है तो तुममे और उनमें विशेष अतर कहां रहा ? तब वह शंकाकार कहता है कि हम तो सच्चे जिनदेवकी पूजादिक करते हैं और अन्य मिथ्यादेवकी पूजादि करते है इतना तो विशेष है। उसे कहते है कि धर्मबुद्धि तो तुम्हारे भी नहीं और अन्यको भी नही, जिसप्रक । ोनों बालक अज्ञानी थे। उन दोनोंमें एक बालक के हाथ हीरा आया और दूसरे के हाथ एक बिल्लोरी कांच आया, उन दोनोंने ही श्रद्धापूर्वक उनको अपने आँचलमें बांध लिया, परन्तु दोनों ही बालकोंको उनका यथार्थ मतिज्ञान नही है, इस अपेक्षा दोनों ही अज्ञानी हैं। जिसके हाथमें हीरा आया वह हीरा ही है और काच आया उसके पास कांच ही है। तथा वे कहते हैं :—अन्यमत-वालोंके गृहीतमिथ्यात्व है और हम सच्चे देवादिककी पूजा करते हैं, अन्य देवादिककी नही करते, इसलिये हमें गृहीतमिथ्यात्व तो छूटा है, इतना ही लाभ हुआ। उसे कहते हैं :—

तुमको गृहीत मिथ्यात्वका ही ज्ञान नहीं कि गृहीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? तुमने तो गृहीतमिथ्यात्व ऐसा माना है कि—अन्य मिथ्यादेवादिका सेवन करना, परन्तु गृहीतमिथ्यात्वका स्वरूप भासित नही हुआ है। उसका सच्चा स्वरूप क्या है सो कहते है :—

यदि देव-गुरु-शास्त्र-धर्म इत्यादिका बाह्यलक्षणोंके आश्रयसे सत्ता, स्वरूप, स्थान, फल, प्रमाण, नय इत्यादिका निश्चय तो न

हो और लौकिकसे उनका बाह्यरूप भिन्न न माने उसे बाह्यरूपसे भी स्वरूप भासित नहीं हुआ सो अन्यको सेवा करता है तथा कुल-पक्षके आश्रयसे पंचायतके आश्रयसे, संगतिके आश्रयसे तथा प्रभावनादि चमत्कार देखकर व शास्त्रमें और प्रगटमें देवादिककी पूजादिकसे भला होना कहा है उस मान्यताके आश्रयसे सच्चे देवादिकका ही पक्षपातीपनेसे सेवक होकर प्रवर्तता है उसके भी गृहीतमिथ्यात्व ही है। इसप्रकार तो दूसरे भी अपने ही देवको मानते हैं और जिनदेवको नहीं मानते। इसलिये गृहीतमिथ्यात्वका त्याग तो यह है कि—अन्य देवादिकके बाह्यगुणोंको तथा प्रबंधके आश्रयस्वरूप पहले जानकर स्वरूप-विपर्यय-कारणविपर्यय और भेदाभेदविपर्ययरहित ज्ञानमें निश्चय करके, फिर जिनदेवादिकका बाह्यगुणोंके आश्रयसे व व्यवहाररूप निश्चय-करके, पश्चात् अपना मुख्य प्रयोजन सिद्ध न होनेसे हेय-उपादेयपना माननेपर अन्यकी वासना मूलसे छूटती है और जिनदेवादिकमें ही सच्ची प्रतीति उत्पन्न होती है।

वहां प्रथम अवस्थामें गृहीतमिथ्यात्वके लिये तन, धन, वचन, ज्ञान, श्रद्धान और कषाय आदि लगाता था वह व्यवहारसे जिनदेवा-दिका सेवक होकर प्रवर्तता हुआ अब इन दूषणोंसे रहित हर्ष पूर्वक विनयरूप होकर सम्यक्त्वके पचीस मलको विचार पूर्वक नहीं होने देना, तन धन वचन ज्ञान श्रद्धान और कषाय आदि उसमें लगाकर सद्भावरूप ही प्रवर्तता है, अन्यमें नहीं प्रवर्तता। प्रभावको साधता है, परन्तु मिथ्यासद्भावको स्थान नहीं देना. तथा समर्थन नहीं करता और सहकारी कारण नहीं बनता।

वहां देवके कथनमें तो देवसम्बन्धी मिथ्यासद्भाव नहीं करता, अन्यदेव और जिनदेवमें समतारूप प्रवृत्ति नहीं रखता, जिनदेवका (अन्तरंग) स्वरूप और बाह्यरूप अन्यथा नहीं कहता, नहीं सुनता तथा वीतरागदेवकी प्रतिमाका रूप सराग रूप नहीं करता, अविनयादिरूप प्रवृत्ति नहीं करता और वह रूप स्वयं नहीं बनता, व लौकिकमें अतिशय

रूप अन्यथा नहीं कहता, स्वयं अविनय देखे उसका प्रबंध नहीं करता है तथा सच्चे देवादिककी प्रतिमाजीका अविनय होता हो वहांसे बचा रहता है। इसीप्रकार शास्त्रादिका भी जानना। इसप्रकार अन्य देवादिसे सम्बन्ध छोड़नाही गृहीतमिथ्यात्वका छूटना है।

सच्चे देवादिसे सच्ची प्रवृत्ति व्यवहाररूप विषय-कषायादिके आश्रय रहित करनेसे गृहीतमिथ्यात्व छूटेगा इसलिये तुम अन्य देवादिसे तो परीक्षा किये बिना ही सम्बन्ध छोड़ो, परन्तु सच्चे देवादिमें तो जैसी पहले औरोंसे सच्ची प्रीति थी, वैसी प्रीति नही हुई तो तुम अपने परिणाममें विचार करके देखो! क्योंकि अंतरंग प्रीतिका कार्य बाह्यमें दिखे बिना नहीं रहता। इसलिये गृहस्थ है उसके लिये यह सुगम मार्गरूप कल्याणकी बात है कि वर्तमान क्षेत्र-कालमें सभी अपने-अपने देवादिकसे प्रवृत्ति करते है और तुम भी धन, कुटुम्बादिका पोषण, भोग-रोगादिक व विवाहादि कार्योमें जैसे प्रवर्तते हो वैसे ही पद योग्य अनेक प्रकारसे उसीरूप प्रवर्तो। जब तक तुम्हारेमें विशेष धर्मवासना न बढे तबतक उनके हिस्सेका धनादि तो उनके लिए ही लगाते रहो। पहले आप प्रथम अवस्थामें गृहीतमिथ्यात्वके लिए जो करते थे व वर्तमानमें दूसरे तुम्हारी बराबरीके गृहस्थ जो अन्य देवादिके लिए करते है उसी भांति माया-मिथ्यात्व-निदानरहित सच्चे देवादिकके लिए तुम उस योग्य हो सो करोगे तभी गृहीतमिथ्यात्व छूटेगा। उनके हिस्सेका तन मन धन वचन ज्ञान श्रद्धान कषायक्षेत्र और कालादि यहा लगाओगे तब बाह्य जैन बनोगे। यदि तुम बाह्यरूप सच्चा आस्तिक्य नही लाओ व ज्ञान नहीं करो, क्रिया नही सुधारो, धन नही लगाते, उल्लास पूर्वक कार्य नहीं करते और आलस्य आदि कर्म नही छोड़ो कोरी बातोंसे पांच प्रमादी अज्ञानी भाइयोंसे सम्बन्ध रखकर जैन बने हो तो बनो, परन्तु फल तो शास्त्रमर्यादानुसार प्रवृत्ति करनेसे सच्चा लगेगा। यदि यह अवसर चला जायेगा तब तुम पश्चाताप करोगे और कहोगे कि पहले मिथ्यात्वके कार्यमें हर्षपूर्वक तन मन धन खर्च किया था

परन्तु अब तुम सच्चे जैनमतके सेवक बनो और उसप्रकारके कार्योंमें तन धनादि नहीं लगाओ तो इस मतमें आनेसे भी तुम्हारी शक्ति घट गई अथवा कपटसे लोकको दिखलानेके लिए सेवक हुए हो व उनकी महानता तुम्हें भासित नहीं हुई तथा तुमको उनमें कुछ भी फलकी प्राप्ति होना भासित नही हुआ व तुम्हारे हृदयमें यथार्थ रहस्य नहीं उत्पन्न हुआ जिससे तुम स्वयमेव उत्साहित होकर इन कार्योंमें सुखरूप यथायोग्य प्रवर्तन नहीं कर सकते।

अथवा पंचायत या वक्ताके कहनेसे व प्रबन्ध बधानेके आश्रयसे निराश होकर प्रवर्तते हो तथा तुमको यह कार्य फीके भासित हुए ऐसा लगता है, उसका कारण क्या है ? यहां तुम कहोगे कि रुचि उत्पन्न नही होती —उमंगपूर्वक शक्ति चलानेका उद्यम नहीं होता, वहां हम क्या करें ? इसपरसे ऐसा विदित हुआ कि तुम्हारा भविष्य ही अच्छा नहीं है। जिसप्रकार रोगीको औषधि और आहारन हीं रुचता हो, तब समझना चाहिए कि उसका मरण निकट आ गया है, उसी-प्रकार अपने अन्तरंगमे वासना उत्पन्न नहीं होती और मात्र महान् कहलानेके लिए तथा दस पुरुषोंमें सम्बन्ध रखनेके लिए कपट करके अन्यथा प्रवर्तते हो उसमें लौकिक अज्ञानी जीव तुमको भला कह देंगे परन्तु जिनके तुम सेवक बननेवाले हो वे तो केवलज्ञानी भगवान् है, उनसे तो यह कपट छिपा नहीं रहेगा तथा परिणामोंके अनुसार कर्म बँधे बिना नहीं रहते, और तुम्हारा बुरा करनेवाले कर्म ही हैं, इस-लिए तुमको इसप्रकार प्रवर्तनेमे क्या लाभ हुआ ? तथा यदि तुम इनसे विनयादिरूप, नम्रतारूप व रसस्वरूप नहीं प्रवर्तते तो तुमको उनका महान्पना व स्वामीपना भासित नहीं हुआ। वहाँ तो तुम्हारे अज्ञान आया। तो फिर बिना जाने सेवक क्यों हुए ? तुम कहोगे कि हम जानते हैं, तो इन देवादिकके लिए उच्चकार्योंमें मिथ्यात्व जैसी उमगरूप प्रवृत्ति तो न हुई। जिसप्रकार कुलटा स्त्री परपुरुषको अपना पति जानकर उसरू कार्य करती थी, उसे अच्छा भोजन खिलाती थी परन्तु किसी भाग्योदयसे

उसे अपने पतिका मिलाप हुआ, वहाँ जिसप्रकार पहले परपुरुषके निमित्त अपना स्वरूप व अच्छा कार्य बनाती थी उसीप्रकार अब अपने पतिके सम्बन्धमें रस व अच्छा कार्य हो सकने पर भी न करे तो उसको बड़ी खराब कुल्टा ही कहते हैं, उसी प्रकार तुम पहले मिथ्यात्व अवस्थामें अन्य देवादिके लिए रसरूप अच्छे-अच्छे उत्साहमय कार्य करते थे और अब महान् भाग्योदयसे तुमको तुम्हारे सच्चे स्वामी-जिनदेवकी प्राप्ति हुई, वह तुमने जान लिया तथा मुखसे भी कह चुके फिर भी उस स्त्रीके समान अन्य देवके सम्बन्धसे रस, उमंगरूप सेवा व धनका खर्च करना, पूजादि करना, यात्रादि पर जाना, भयवान होना तथा नीचे बैठना आदि कार्य होते थे और अब इन सच्चे देवादिके सम्बन्धमें वह रस नहीं आता, वह उमंग व वैसे कार्य नहीं होते इससे जाना जाता है कि तुम्हारे उस कुल्टा स्त्रीवत् महान् गृहीतमिथ्यात्व है। क्योंकि यह तो बड़ा भारी गजब है कि अपने निज स्वामीके सम्बन्धमे हर्षरूप कार्य नहीं होता। तुम स्वय विचार करके देखो, हमको जबरदस्ती तुम पर दोष नहीं लगाना है। और यदि तुम्हारेमे इसीप्रकार प्रवृत्ति बन रही है तो तुम्हारे घर दोष अवश्य होंगे, क्योंकि परपुरुषकी अपेक्षासे निज-पतिके प्रति अधिक रसस्वरूप कार्य होने पर ही शीलवानपना रहता है सो उसी प्रकार सुदेवादिके सम्बन्धमें सच्चे इसरूप कार्यमे वृद्धि होने पर ही तुम्हारे धर्मात्मापना आयेगा।

तथा तुम कहोगे कि 'हमको विशेषफल तो कुछ भासित नहीं हुआ'।

भावार्थ :-अन्य देवादिकसे तुम्हे क्या फल हुआ है वह कहो। जो फल बताया है वह उनके सेवनसे हुआ हो तो बतला दो अथवा युक्तिसे बतला दो। आर्त्तध्यानके सिवा इनसे अन्य कोई फल नही होता। सच्चे देवादिकसे जो फल होता है उसका वर्णन निश्चय प्रकरणमें करेंगे।

जो धनका आगमन, शरीरकी निरोगता, पुत्रादिकसे लाभ, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति, पुत्र-स्त्री आदिको जीवित रहनेकी इच्छा,

सुन्दर स्त्रीका सम्बन्ध मिलना, विवाहादि कार्योंमें विघ्नका नहीं होना इत्यादि कार्योंके लिए तू अन्य देवादिकको पूजता है व विनयादि करता है सो हम पूछते हैं कि:—अन्य देवादिकसे इन इष्टकार्योंकी प्राप्ति अवश्य होगी ऐसा निश्चय तुमने स्वाश्रित या पराश्रित किसप्रकार किया है कि जिससे तुमको उनकी प्रबल आस्था और आशा है वह कहो ! प्रत्यक्षसे, अनुमानसे तथा देश-परदेशकी बातोंसे निश्चय करके आये हो तो हमको भी यह निश्चय करा दो ! वहां प्रत्यक्षमें तो अपनी आंखोंसे यह दिखलाओ कि अन्यदेवको पूजनेसे इष्टकी प्राप्ति मुझे व अन्यको अवश्य हुई है तथा जिनदेवके पूजनेवालोंको अनियामक है अर्थात् कोई नियम नहीं है, अनुमानमें ऐसा पक्का साधन बतलाओ जिससे यह भासित हो जाये कि अन्य-देवके पूजने वालोंको इष्टकी प्राप्ति होती ही है, और जिनदेवको पूजनेसे होती भी है और नहीं भी होती, तथा कानोंसे यह बात मुख्य सुननेमें आयी हो कि देश-परदेशमें अन्य देवादिकके पूजनेवालोंको तो इष्टकी प्राप्ति हुई है, और जिनदेवके पूजने वालोंको हुई भी है और नहो भी हुई है। सो ऐसा नियम तो निरपेक्ष होता है, विचार करने पर वह सत्य भासित नही होगा, क्योकि जीवन-मरण, सुख-दु:ख, आपत्ति-सम्पत्ति, रोग-निरोगता, लाभ-अलाभ इत्यादि तो जैन तथा अन्यमती सबको अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मोदयके आश्रित सामान्य-विशेषरूपसे होते हैं।

जैसे शीतला पूजनेवाला तो अपने पुत्रके जीवनके लिए ही पूजता है, पूजने पर भी मरते हुए प्रत्यक्ष देखा जाता ही है तथा अनुमानसे भी ऐसा भासित नहीं होता कि शीतला पूजनेवालेका पुत्र जीवित रहेगा ही, तथा देश-परदेशसे सुननेमें भी नही आया कि सर्व ही पूजनेवालोके पुत्र जिए ही है। इसप्रकार सब बातें समझ लेना चाहिए। जगतमे भी ऐसा ही कहते हैं।

जब शीतलाके पूजते-पूजते पुत्र मर जाये तब कहते हैं कि :—

प्राणीकी आयुस्थिति हो उतनी ही वह भोगता है, एक क्षण भी आगे-पीछे नहीं हो सकता है, शीतला क्या करे! यह तो पूजादिकका व्यवहार बना दिया है। इसमें तो जगतके कहनेको भी जीवन-मरण, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ आदिके मूलमें तो कर्म आयु साता-असाता तथा अन्तरायादिकी अनुकूलता व प्रतिकूलता ही प्रबल कारण हो रहा है, इसलिए सत्यार्थदृष्टि द्वारा निर्णय करके सब सकल्प छोड़कर अपने देवमें ही आस्तिक्यबुद्धि करना योग्य है।

कार्य तो कर्मके उदयके आश्रित जो होना है वही होगा— ऐसा निश्चय रखना योग्य है परन्तु धर्म छोड़नेसे इष्टकी प्राप्ति होना सम्भव नही है, अन्य मतवाले भी ऐसा ही कहते है कि :—

अपने-अपने इष्टको नमन करे सब कोय,
इष्ट विहूणा परशराम नमें ते मूरख होय,

तथा वह कहता है कि जो सच्चे मनसे पूजते है उनको तो इष्टकी प्राप्ति होती ही है। उसका समाधानः-जहाँ कर्मके उदयसे इष्टकी प्राप्ति होती है वहाँ तो तुम उनका किया बतलाते हो, तथा जहाँ इष्टकी प्राप्ति नहीं हो व अनिष्टकी प्राप्ति होती है, तब तुम कहते हो कि सच्चे मनसे सेवा नहीं की; तो अब उनका ही किया होता है ऐसा निश्चय हमें हो वह उपाय बताओ! यहाँ तुम कहोगे कि-जिनदेवके पूजनेवालेको भी तो यह नियम दिखाई नही देता, तो यह तेरा कहना सत्य है, परन्तु तुम तो अपने देवको कर्त्ता कहते हो, यदि हम भी कहें तो दूषण आता है, परन्तु हम तो कर्त्ता कहते नही। जब यह जीव तप-त्यागादिकसे व विषय-कषाय व्यसनादिकसे शुभ-अशुभ कर्मको बांधता है, तब उसके उदयसे स्वयमेव इस जीवके बाह्य निमित्तादिकका सहकारीपना होने पर इष्ट-अनिष्टका सम्बन्ध बनता है। वहां वह कहता है कि-जब तुमने भला-बुरा होना अपने परिणामोंसे माना है तब तुम देवादिककी पूजा किसलिए करते हो?

उसका उत्तर :—हमारी तो यह आम्नाय है कि-अपने श्रद्धान-ज्ञान-त्याग-तपादिकरूप कल्याणमार्गका ग्रहण करते हैं परन्तु जो उनके पूजनादिकसे ही लौकिक इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टकी अप्राप्ति मानकर उन्हे पूजते हैं उनको तो मुख्यरूपसे पापबन्ध ही होता है क्योंकि उनको देव तो प्रिय नहीं लगा परन्तु अपना प्रयोजन ही प्रिय लगा है। जब अपना प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा तब वह देवसेवन छोड़ देंगे, अन्यथा वचन कहने लगेंगे, वहाँ उन्हें देवमें श्रद्धा तथा राग कहां रहा? तथा पूर्वकर्मका अच्छा-बुरा उदय आनेका प्रमाण नहीं है इसलिए ऐसे प्रयोजनके अर्थ जिनदेवका सेवक होना नही कहा है। हमे तो जिनदेवने संसार-मोक्षमार्गका सच्चा विधि-निषेध तथा उनका सत्य स्वरूप दर्शाया है, जिसे जानकर भव्यजीव अपना कल्याण करते है व सुखरूप जो शान्तरस उसका अवलम्बन लेते है। ऐसे प्रयोजनकी सिद्धि होती जानकर उनका सेवक बननेको कहा है इन दोनों प्रयोजनकी सिद्धि उन्हींसे होती जानकर उनका सेवक बननेको कहा है, इन दोनो प्रयोजनकी सिद्धि उन्हीसे होती है।

प्रश्न :—तो स्तोत्रादिमें या पुराणादिमें ऐसा भी तो कहा है कि उनके पूजनादिसे रोग दूर हो जाते है, ऋद्धि आदि प्रगट होती है व विघ्न दूर हो जाते हैं ?

उत्तर:—तुम्हे नय विवक्षाका ज्ञान नही इसीसे स्तोत्रादिमें व्यवहारनयसे उनमे रोगादि दूर होना इत्यादि कहा है क्योंकि भला कार्य होता है वह शुभकार्य उदयसे होता है और यह बातें शास्त्रमें, जगतमें व विचार करने पर अपने चित्तमें प्रगट जाननेमें आती हैं। शुभकार्यका उदय तो तभी होता है कि जब पूर्वमें शुभका बन्ध हुआ हो और शुभकर्मका बन्ध तब होता है कि जब श्रद्धा-ज्ञान-आचरण-त्याग-तप और पूजादि शुभकर्मके कार्यरूप स्वयं प्रवर्ते तथा शुभकार्योमें प्रवृत्ति तब होती है कि जब शुभकार्योंका स्वरूप ज्ञात हो जाये। अब सच्चा स्वरूप व मार्ग पूर्वापर विरोधरहित दर्शाने वाले श्री सर्वज्ञ वीतराग जिनदेव ही है; इसलिए सर्व लौकिक इष्ट कार्य भी व्यवहार-

नयसे स्तोत्रादिकमें उनके किये हुए कहे हैं, क्योंकि उन्होंने जब सत्यमार्ग दर्शाया तब यह जीव शुभमार्गरूप प्रवर्तने लगा और जब शुभमार्गरूप प्रवर्त्तने लगा तब नवीन शुभकर्मका बन्ध हुआ और जब शुभकर्मका बंध हुआ तब उस शुभकर्मका उदय आया और जब शुभकर्मका उदय आया तब अपने आप रोगादिक दूर हो जाते हैं तथा इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति हो जाती है, इसप्रकार व्यवहारसे श्री जिनदेवको कर्त्ता और अनिष्टका हर्त्ता कहा है । जैसे वैद्य है वह तो औषधि आदिका बतलाने वाला है, परन्तु इस औषधादिकका सेवन जब रोगी करता है तब उसके रोगादिक दूर हो जाते है व पुष्टताकी प्राप्ति होती है । परन्तु उनके उपकार स्मरणके लिए व्यवहारसे ऐसा कहते हैं कि वैद्यने हमको जीवनदान दिया व रोगसे निवृत्ति की । उसीप्रकार मार्गका स्वरूप दर्शनेरूप उपकार-स्मरणके लिए स्तोत्रादिकमे ऐसी बात कही है । परन्तु जो इस नयविवक्षाको तो नहीं समझते और उन्हींको कर्त्ता मानकर स्वयं कल्याण-मार्गको ग्रहण न करे और उन्हींसे सिद्धि होना मानकर निश्चित रहते है वे तो अज्ञानी तथा पापी भी है । तथा जो उनको कर्त्ता हर्त्ता मानते हैं और स्वयं भी शक्ति अनुसार शुभकार्योंमे प्रवर्तते है वे तो अज्ञानी शुभोपयोगी है तथा जो उनको सत्यस्वरूप-सत्यमार्गको प्रकाशित करनेवाला मानते हैं और अपना भला-बुरा होना अपने परिणामोसे मानते हैं, उसरूप स्वयं प्रवर्तते हैं तथा अशुभकर्मोंको छोड़ते हैं वे जिनदेवके सच्चे सेवक हैं।

यहां जिन्हें जिनदेवका सेवक बनना हो व जिनदेवके उपदेशित मार्गरूप प्रवर्त्तना हो उन्हें सर्व प्रथम जिनदेवके सच्चे स्वरूपका अपने ज्ञानमे निर्णय करके उसका श्रद्धान करना चाहिए, वहां देवका त्रिदोष रहित मूल लक्षण निर्दोष गुण है, क्योंकि निर्दोष देव ऐसा वाक्य है । वहां देव अर्थात् पूज्य व सराहनीय है, अब यहां देवका निश्चय करना है. वह देव जीव है, इसलिए जीवमे हों ऐसे दोष सर्व प्रकारसे जिसको दूर हुए हैं वही जीव पूज्य एवं श्लाध्य है । उसीको देव

संज्ञा है, जैसे लौकिकमें हीरा-स्वर्णादिकमें कुछ दोष हो तो उससे उसकी कीमत घट जाती है उसीप्रकार जीवको नीचा दिखलानेवाले व उसकी निन्दा करानेवाले अज्ञान-रागादिक दोष हैं उन्हींसे जीवकी हीनता होती है।

क्योंकि बढ़िया कपड़े पहिने हो, सुन्दर सूरत हो, उत्तम कुलका हो और आभूषणादिक पहिने हो परन्तु यदि अल्पबुद्धि हो व विपर्यय हो व क्रोध-मान-माया-लोभादि कषायसहित हो तो जगत उसकी निन्दा ही करता है। उसीप्रकार जिसमें ज्ञान अल्प हो और कषाय बहुत हो तो उसकी निन्दा ही करते हैं। इसलिए विचार करने पर निन्दा करानेवाले दोष तो अज्ञान-रागादिक ही हैं और गुण सच्चा वीतरागता ही है, क्योंकि पुण्यवान गृहस्थ भी त्यागी तपस्वीको पूजा करते हैं इसलिए यह जाननेमें आता है कि सर्व लौकिक इष्ट वस्तुओंसे भी त्याग-वैराग्य श्रेष्ठ है। वहां जिनको परिपूर्ण सत्य ज्ञान-वीतरागता प्रगट हुई है वे तो सर्वोत्कृष्ट पूजने योग्य हैं और उन्हींको परमगुरु कहते है तथा जिनको पूर्ण सत्यज्ञान वीतरागता प्रगट नहीं हुई वे भी एक देश पूज्य हैं, ऐसा जानना।

प्रश्न :—तुम्हारे देवको ही ज्ञानकी पूर्णता हुई है और अन्य देवोंको नहीं हुई, ऐसा किसप्रकार जाननेमें आया है, सो कहो ?

उत्तर :—हम निरपेक्ष होकर कहते है कि जिसके वचन व मतमें प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम तथा न्यायरूप लौकिक स्ववचनसे विरोध न आये वही सर्वज्ञ वीतराग है, क्योंकि उसका सर्वज्ञ वीतरागपना प्रत्यक्ष तो भासित नहीं होता, प्रत्यक्ष तो केवलीको ही भासित होता है तथा आगममें लिखा हुआ होनेसे ही मान ले तो उसके ज्ञानमें यह विषय नहीं आया, मात्र अन्यके वचनसे मान लिया, वहां उसको वस्तुका यथार्थ ज्ञान तो नहीं हुआ केवल वचन श्रवण हुआ है। ऐसे अज्ञानप्रधानीको अष्टसहस्री आदि ग्रन्थोंमें अज्ञानी कहा है।

इसलिए जो प्रयोजनभूत बातें आगममें कही हैं उनको प्रत्यक्ष अनुमानादिकसे अपने ज्ञानमें निश्चय करके आगमपर प्रतीति होना योग्य है। इन प्रश्नोत्तरोंका विशेष व्याख्यान प्रमाण-निश्चयके कथनमें लिखेंगे। यहाँ अनुमान द्वारा अरिहन्त के स्वरूपका निर्णय होगा।

अनुमान तब होता है कि जब साध्य-साधनकी व्याप्तिरूप सत्य तर्क पहले हो। अब यहाँ असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक तथा अकिंचित्कर इन चार दूषणरहित अन्यथानुपपत्तिरूप साधनका प्रथम ही निर्णय करना। वहाँ तुम जिस अरिहन्तदेवको पूजते हो-प्रतिदिन दर्शन करते हो वह मात्र कुलबुद्धिसे ही करते हो कि लौकिकपद्धति द्वारा ही करते हो कि उनकी प्रतिमा विराजमान है उनकी आकृतिका छोटा-बड़ा आकार व वर्णभेद आदि पर ही तुम्हारी दृष्टि है? अथवा कुछ अरिहन्तका मूलस्वरूप भी भासित हुआ है? तब वे कहते है कि कुलपद्धतिमे भी उन्हीका नाम कहनेमें आता है व शास्त्रमे भी सुना है कि अठारह दोषरहित हैं, छियालीस गुणों सहित विराजमान हैं,ध्यानमुद्राके धारक है, अनन्त चतुष्टय सहित हैं, समवसरणादि लक्ष्मीसे विभूषित है, स्वर्ग-मोक्षके दाता तथा दु:खविघ्नादिकके हर्त्ता है। इत्यादि गुण शास्त्रोंसे सुने हैं तथा स्तोत्रादि पाठोंमें पढ़ते हैं उसमें भी वही कथा कही है. इसलिए हम उनका पूजन करते है, दर्शन करते है। उनको हम कहते है कि :--

तुमने जो बात कही वह तो सब सत्य है, परन्तु तुमको इन बातोंका युक्तिपूर्वक ज्ञान, आस्तिक्यता व रसरूप सेवकपना भासित नहीं हुआ, क्योकि तुम कुलपद्धतिमें उन्हीके कहलाते हो यह तो सत्य है, परन्तु तुम जैन कहलाते हो उसका तो यही अर्थ है कि जिसको जिनदेवका सेवकपना हो वह जैन, जैसे पतिव्रता स्त्री सुख-दु:खादि सर्व अवस्थाओंमे अपने पतिकी ही कहलाती है तथा पुत्र है वह सुख-दु:ख अवस्थाओंमे अपने पिताकी जातिका ही कहलाता है उसीप्रकार तुमको तो जिनदेव ही मेरे स्वामी है ऐसा उसका

आस्तिक्यभाव सच्चा भासित नहीं होता। सर्व मतवाले अपने-अपने इष्टदेवके सेवक होकर प्रवर्तते हैं, परन्तु तुममें तो यह भी नहीं, इसलिए तुम शीतल दृष्टिसे विचारकर देखो, तथा तुमने शास्त्रोंसे सुना है, परन्तु हम पूछते हैं कि शास्त्रमें तो लिखा ही है परन्तु तुमको कहां भासित हुआ कि देव अठारह दोषरहित हैं ? यहाँ कोई तर्क करता है कि श्वेताम्बरादिक तो युक्तिपूर्वक उत्तर देनेमें समर्थ हैं अथवा दोषरहित हैं तो उनको फूलमाला पहिराना व शरद पूर्णिमाका उत्सव करना इत्यादि दोषके कार्योंको बताते हो तथा इन अठारह दोषोंमें कितने दोष पुद्गलाश्रित हैं, कितने दोष जीवाश्रित हैं व कितने दोष जीव पुद्गल आश्रित हैं यह तो निश्चय किया होता तथा अठारह दोष रहितपना होते ही देवपना आता है, यह निश्चय किया होता व उनके अठारह दोष किसप्रकार कहे गये हैं उनका युक्तिपूर्वक निश्चय किया हो तो फिर दोषसहितमें देवपना नहीं मानते तब इन्हींको मानते, तब अठारह दोषरहित अर्हन्त है, ऐसे वाक्य बोलना तुम्हारा सच्चा होता।

तथा तुमने कहा कि वे छियालीस गुणसहित विराजमान हैं परन्तु वे सब अरिहन्तोंमें तो हैं नहीं। तुमने कुछ निर्णय भी किया है कि ऐसे ही कहते जाते हो ? वहां छियालीस गुण तो यह है :— जन्मके दस अतिशय, केवलज्ञानके दस अतिशय, देवकृत चौदह अतिशय, आठ प्रातिहार्य तथा चार अनन्तचतुष्टय। परन्तु अरिहन्तदेव तो सात प्रकारके हैं :—

(१) पंचकल्याणकयुक्त तीर्थंकर (२) तीन कल्याणकयुक्त तीर्थंकर (३) दो कल्याणकसयुक्त तीर्थंकर (४) सातिशय केवली (५) सामान्य केवली। (६) उपसर्ग केवली (७) अन्तकृत केवली।

अब उन सर्व में छियालीस गुण किसप्रकार सम्भवित हैं ? यह तो केवल एक पचकल्याणकयुक्त तीर्थंकरमें ही ये सर्व पाये जाते हैं। इन सात प्रकारके अरिहन्तों का स्वरूप तो इसप्रकार है :—

(१) जो पूर्वभवमे तीर्थंकर प्रकृति बांधकर तीर्थंकर होते हैं उनको तो नियमसे गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ये पाँचों ही कल्याणक होते है उनको तो छियालीस गुण होना सम्भवित हैं।

(२) जो इस मनुष्यपर्यायके ही भवमें गृहस्थ अवस्थामें ही तर्थंकरप्रकृति बांधते है उनको तप, ज्ञान और निर्वाण ये तीन कल्याणक ही होते है, इसलिए उनको जन्मकल्याणके दस अतिशय नही होते, केवल छत्तीस गुण ही पाये जाते है।

(३) जो इस मनुष्यपर्यायमें ही मुनिदीक्षाके बाद तीर्थंकर-प्रकृति बाधते है उनको ज्ञान और निर्वाण ये दो ही कल्याणक होते है, इसलिए उनको भी जन्मके दस अतिशय बिना छत्तीस गुण पाये जाते हैं।

(४) जिनको तीर्थंकरप्रकृतिका उदय नही होता परन्तु जो गन्धकुटी आदि सहित होते है उनको सातिशय केवली कहते हैं।

(५) जिनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ हो परन्तु गंधकुटी आदि न हो उनको सामान्यकेवली कहते है।

(६) जो केवलज्ञान उत्पन्न होते ही लघुअंतर्मुहूर्तमें निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं उनको अन्तकृतकेवली कहते है।

(७) जिनको उपसर्गअवस्थामें केवलज्ञान हुआ हो उनको उपसर्गकेवली कहते है।

अब अतिशयकेवलीको जन्मके अतिशय तो नही होते, मात्र आठ प्रातिहार्य चौदहदेवकृत अतिशय, केवलज्ञानके दस अतिशय तथा चार अनन्तचतुष्टय पाये जाते है। सामान्यकेवली, उपसर्गकेवली और अन्तकृतकेवलीको भी जन्मादिकके अतिशय सम्भव नही है, इसलिए किये बिना ही छियालीस गुण सहित अरिहन्तदेव हैं। इसप्रकार कहना सम्भव नही है, क्योंकि छियालीस गुण तो पंचकल्याणकसहित तीर्थंकर हो उन्हीको पाये जाते है। तथा ध्यानमुद्रा देखकर पूजते

हो तो उसमें इतनी बात और जानना चाहिये कि ध्यानमुद्रा ऐसी पूज्य क्यों है तथा ध्यानमुद्रा ऐसी ही है, तथा ऐसी ध्यानमुद्रा ही शुद्ध व शुभचिंतवनका आधार है तथा ऐसी सच्ची ध्यानमुद्रा उन्हींको सम्भवित है अन्यको सम्भवित नहीं तथा ऐसी ध्यानमुद्राको हम किसलिए पूजते हैं ? यह प्रयोजन विचारना चाहिये। इसप्रकार युक्तिपूर्वक निश्चयकरके जो पूजते हैं, दर्शन करते हैं उन्हींको सच्चे प्रयोजनकी सिद्धि होती है।

तथा तुम कहते हो कि—अनन्तचतुष्टयमें विराजमान हैं इसलिये उनको पूजते हैं, दर्शन करते हैं, यह तो सत्य है। वे तो अनन्तचतुष्टयसहित विराजमान ही हैं तथा शास्त्रोंमें लिखा हुआ ही है, परन्तु तुमको तो उनका अपने ज्ञानमें निर्णय करना था ? अनन्त चतुष्टयका स्वरूप क्या है ? तथा उनसे पूज्यपना कैसे आता है और वे इन्हींमें कैसे पाये जाते हैं ? व अनन्तचतुष्टय सहितको हम क्यों पूजते हैं ? ऐसा भी तुमने कभी निश्चय किया है ? कि मात्र लौकिकपद्धतिसे ही ये वचन कहकर पूजते हो ? वह तुम भलीप्रकार विचार करके देखो कि उसका तुमको कुछ ज्ञान हुआ है या नहीं ?

तथा तुमने कहा कि समवसरणादि-लक्ष्मी सहित है परन्तु वहाँ प्रथम तो समवसरणादि लक्ष्मी उनको हुई है या नहीं ऐसा प्रमाण चाहिये। तथा समवसरणमें क्या रचना है वह विशेष जानना चाहिये तथा वह रचना वीतरागदेवके निकटमें इन्द्रने क्यों बनायी ? इस रचनासे संसारका कैसे पोषण किया जाय ? समवशरणादि लक्ष्मीसे उनमें पूज्यपना किसप्रकार आया ? तथा समवसरणादि लक्ष्मी सहित जानकर हम उनको क्यों पूजते है ? ऐसा निश्चयकर पूजने योग्य है।

तथा स्वर्ग-मोक्षका दाता जानकर पूजादिक करते हो सो वे स्वर्ग-मोक्षके दाता किसप्रकार हैं ? जैसे कोई दातार किसीको वस्तु देता है व जैसे किसीको धनादिक पैदा करनेकी सलाह देता है और वह स्वयं उस कार्यरूप प्रवर्तता है, तब तो उसे धनादिककी प्राप्ति हो और तभी वह उनका उपकार मानकर कहता है कि यह धन आप ही ने मुझे दिया

है। तथा एक प्रकार यह है कि वह जीव तो अयथा कार्यरूप चाहे जिस-प्रकार मिथ्यात्व, अभक्ष्य तथा अन्याय आदि कार्योंमें प्रवर्ते और वह मन्दिरादिकमें आये तथा झूंठी पूजा, जाप्य, नमस्कारादि लौकिक पद्धति से कार्य करे उसको भी स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति करा देते हैं; तथा एक विवक्षा यह है कि यह जीव अज्ञानी है परन्तु उनके वचनोंसे स्वर्ग-मोक्षका मार्ग प्रगट हुआ उसको जानकर भव्य जीवके उस मार्गको ग्रहण करने पर स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति हुई, इसलिये उनको मोक्षमार्ग दिखानेका उपकारी जानकर स्वर्ग-मोक्षका दाता कहते हैं।

वहां तुमने नयविवक्षा समझकर उनको मार्गोपदेशक जानकर फिर उनके कहे हुए सच्चे मोक्षमार्गको जो ग्रहण करेंगे उनको स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होगी। इसप्रकार जानकर उपदेशकका उपकार स्मरण करके उनको स्वर्ग-मोक्षका दातार कहो वह तो तुम्हारा कहना सत्य ही है, परन्तु उन्हींको स्वर्ग-मोक्षका दातार जानकर स्वयं निश्चिन्त होकर स्वच्छन्द बनकर प्रवर्तता है उसे श्री गोम्मटसारमें विनय-मिथ्यादृष्टि कहा है।

पुनश्च, तुम कहते हो कि:—हमने भगवानको सुखस्वरूप निर्णय किया है। परन्तु तुम सुखका स्वरूप भोग-सामग्रीका मिलना, निरोगता तथा धनादिककी प्राप्तिको मानते हो। सो यह सुख तो भोजनादि व स्त्री आदि व अन्य कुदेवादि व राजादि तथा औषधि आदिसे प्राप्त हो जाता है। ऐसा विचार करने पर आकुलता न मिटनेसे ये दुःख ही है परन्तु जो सम्यग्ज्ञान पूर्वक निराकुलताजनित सुख उनसे होता है वह तुम्हें प्रतिभासित नहीं हुआ है व तुमको उसकी रुचि नहीं है।

तुम इस देवके पास कैसा सुख चाहते हो कि जिससे उसको कर्त्ता मानकर पूजते हो। जिसको तुम सुख मानते हो वह लौकिक सुख तो उनके दर्शन करनेसे, सेवक होनेसे तथा वचनोंके सुननेसे थोड़ा-बहुत अवश्य छूटेगा ही; इसलिए तुमको सुखका तथा जिस सुखके वे दातार हैं उसका निर्णय करके पूजने योग्य है।

जो उनके कहे हुए मार्गको पूर्ण प्रकारसे ग्रहण करते हैं वे तो साक्षात् मोक्षको प्राप्त करते हैं और जो एकदेशसे इस सच्चे मार्गको ग्रहण करते हैं वे पुण्यबंध होनेसे पुण्योदयसे स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

इसप्रकार जिनदेव निःश्रेयस तथा अभ्युदयरूप सुखको देनेवाले हैं। तथा तुम दुःखका हर्त्ता व विघ्नका नाशक जानकर जिनदेवको पूजते हो परन्तु तुम दुःख तथा विघ्नका स्वरूप कैसा मानते हो सो बताओ? यदि तुम अनिष्ट सामग्रीको दुःखका कारण मानते हो तो तुम यह नियम बताओ कि यह सामग्री सुखका कारण है तथा यह सामग्री दुःखका कारण है कि जिससे हम सामग्रीके ही आधीन सुख-दुःख मानें, परन्तु विचार करने पर तो ऐसा नियम सर्वथा भासित नहीं होगा, क्योंकि जो सामग्री किसी कालमें, किसी जीवको किसी क्षेत्रमें किसी अवस्थामें इष्ट लगती है वही सामग्री अन्य कालादिकमें अनिष्ट लगती हुई देखी जाती है, इसलिये बाह्य-सामग्रीके आधीन सुख-दुःख मानना भ्रम है। जैसे किसी पुण्यवानको अनेक इष्ट सामग्री मिलती है तो भी मूल दुःख नहीं मिटता है, यदि उस सामग्रीके मिलने पर दुःख दूर हो गया हो तो अन्य सामग्री किसलिये अंगीकार करते हैं? इसलिये तुमने दुःखका स्वरूप असत्य मान रखा है सत्यस्वरूप इसप्रकार है :—

अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली इच्छा ही निश्चयसे दुःख है वह तुम्हें बतलाते है। यह संसारी जीव अनादिसे अष्ट कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जो अवस्था उसरूप परिणमित होता है। वहां भिन्न परद्रव्य, संयोगरूप परद्रव्य, विभाव परिणाम तथा ज्ञेयश्रुतज्ञानके षड्रूप भावपर्यायके धर्म उनके साथ अहंकार-ममकाररूप कल्पना करके परद्रव्योंको मिथ्या इष्ट-अनिष्टरूप मानकर मोह-राग-द्वेषके वशीभूत होकर किसी परद्रव्यको आपरूप मान लेता है। जिसे इष्टरूप मान लेता है उसे ग्रहण करना चाहता है तथा जिसे पररूप-अनिष्ट मान लेता है उसे दूर करना चाहता है. इसप्रकार इस जीवको अनादिकालसे

एक इच्छारूप रोग अन्तरंग शक्तिरूप उत्पन्न हुआ है उसके चार भेद हैं।

१ मोहइच्छा २ कषायइच्छा ३ भोगइच्छा ४ रोगाभावइच्छा।

वहाँ इन चारमेंसे एककालमें एक ही की प्रवृत्ति होती है। किसी समय किसी इच्छाको और किसी समय किसी इच्छाकी होती रहती है।

वहां मूल तो मिथ्यात्वरूप मोहभाव एक सच्चे जैन बिना सर्व संसारी जीवोंको पाया जाता है। प्रवृत्तिरूप चार प्रकारकी इच्छाका कार्य इसप्रकार होता है—

(१) प्रथम मोहइच्छाका कार्य इसप्रकार है:—स्वयं तो कर्म-जनित पर्यायरूप बना रहता है, उसीमें अहंकार करता रहता है कि मैं मनुष्य हूं, तिर्यंच हूं इसप्रकार जैसी-जैसी पर्याय होती है उस–उसरूप ही स्वयं होता हुआ प्रवर्तता है। तथा जिस पर्यायमें स्वय उत्पन्न होता है उस सम्बन्धी संयोगरूप व भिन्नरूप परद्रव्य जो हस्तादि अंगरूप व धन, कुटुम्ब, मन्दिर, ग्राम आदिको अपना मानकर उनको उत्पन्न करनेके लिए व सम्बन्ध सदा बना रहे उसके लिये उपाय करना चाहता है। तथा सम्बन्ध हो जाने पर सुखी होना, मग्न होना व उनके वियोगमें दुःखी होना शोक करना अथवा ऐसा विचार आये कि मेरे कोई आगे–पीछे नहीं इत्यादिरूप आकुलताका होना उसका नाम मोह इच्छा है।

(२) तथा किसी परद्रव्यको अनिष्ट मानकर उसे अन्यथा परिणमन करानेकी, उसे बिगाडनेकी व सत्तानाश कर देनेकी इच्छा वह क्रोध है।

तथा किसी परद्रव्यका उच्चपना न सुहाये व अपना उच्चपना प्रगट होनेके अर्थ परद्रव्यसे द्वेष करके उसे अन्यथा परिणमन करानेकी इच्छा हो उसका नाम मान है।

तथा किसी परद्रव्यको इष्ट मानकर उसे प्राप्त करनेके लिए व सम्बंध बना रखनेके लिए व उसका विघ्न दूर करनेके लिए जो छल-कपटरूप गुप्त कार्य करनेकी इच्छाका होना उसे माया कहते हैं।

तथा अन्य किसी परद्रव्यको इष्ट मानकर उससे सम्बन्ध मिलाने व सम्बन्ध रखनेकी इच्छा होना सो लोभ है।

इसप्रकार उन चार प्रकारकी प्रवृत्तिका नाम कषायइच्छा है।

(३) तथा पाच इन्द्रियको प्रिय लगनेवाले जो परद्रव्य उनको रतिरूप भोगनेकी इच्छाका होना उसका नाम भोगइच्छा है।

(४) तथा क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि व कामविकार आदिको मिटानेके लिए अन्य परद्रव्योंके सम्बन्धकी इच्छा होना उसका नाम रोगाभाव इच्छा है।

इसप्रकार चार प्रकारकी इच्छा है, उसमेसे किसी एक ही इच्छाकी प्रबलता रहती है तथा शेष तीन इच्छाओंकी गौणता रहती है। जैसे-मोहइच्छा प्रबल हो तब पुत्रादिकके लिए परदेश जाता है, वहाँ भूख-तृषा, शीत-उष्णतादिका दुःख सहन करता है, स्वयं भूखा रहता है और अपना मान-मद खोकर भी कार्य करता है, अपना अपमानादिक करवाता है, छलादिक करता है तथा धनादिक खर्च करता है, इसप्रकार मोहइच्छा प्रबल रहने पर कषायइच्छा गौण रहती है।

अपने हिस्सेका भोजन, वस्त्रादि पुत्रादि, कुटुम्बियोंको अच्छे-अच्छे लाकर देता है, अपनेको रूखा-सूखा-बासी खानेको मिले तो भी प्रसन्न रहता है। जिस-तिस प्रकार अपने भी भागोको जबरदस्ती देकर उनको प्रसन्न रखना चाहता है। इसप्रकार भोगइच्छाकी भी गौणता रहती है।

तथा अपने शरीरादिमें रोगादि कष्ट आने पर भी पुत्रादिके लिए परदेश जाता है। वहाँ क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादिकी अनेक बाधायें सहन करता है। स्वयं भूखा रहकर भी उनको भोजनादि खिलाता है। स्वयं शीतकालमें भीगे तथा कठोर बिस्तर पर सोकर भी उनको सूखे तथा कोमल बिस्तरों पर सुलाता है, इसप्रकार रोगाभाव इच्छा गौण रहती है। इसप्रकार मोहइच्छाकी प्रबलता रहती है।

कषायइच्छाकी प्रबलता होने पर पितादि, गुरुजनोंको मारने लग जाता है, कुवचन कहता है, नीचे गिरा देता है, पुत्रादिको मारता लड़ता है, बेच देता है, अपमानादि करता है, अपने शरीरको भी कष्ट देकर धनादिका संग्रह करता है तथा कषायके वशीभूत होकर प्राण तक भी देता है इत्यादि इसप्रकार कषायइच्छा प्रवल होनेपर मोह-इच्छा गौण हो जाती है।

क्रोधकषाय प्रबल होनेपर अच्छा भोजनादि नही खाता, वस्त्रा-भरणादि नही पहिनता है, सुगन्ध आदि नहीं सूँघता, सुन्दर वर्णादि नही देखता, सुरीला रागरागिणी आदि नही सुनता, इत्यादि विषय-सामग्रीको बिगाड़ देता है, नष्ट कर देता है अन्यका घात कर देता है तथा नहीं बोलने योग्य निंद्य वाक्य बोल देता है इत्यादि कार्य करता है।

मानकषाय तीव्र होने पर स्वयं उच्च होनेका, दूसरेको नीचा दिखानेका सदा उपाय करता रहता है। स्वयं अच्छा भोजन लेने पर सुन्दर वस्त्र पहिनने पर, सुगन्ध सूँघने पर, अच्छा वर्ण देखने पर मधुर राग सुनने पर अपने उपयोगको उसमें नही लगाता, उसका कभी चितवन नही करता तथा अपनेको वे चीजें कभी प्रिय नही लगती; मात्र विवाहादि अवसरोंके समय अपनेको ऊंचा रखनेके लिए अनेक उपाय करता है। लोभ कषाय तीव्र होने पर अच्छा भोजन नही खाता है, अच्छे वस्त्रादि नहीं पहिनता, सुगन्ध विलेपनादि नहीं लगाता, सुन्दररूपको नही देखता तथा अच्छा राग नही सुनता, मात्र धनादि सामग्री उत्पन्न करनेकी बुद्धि रहती है। कजूंस जैसा स्वभाव हो जाता है माया कषाय तीव्र होनेपर अच्छा नही खाता, वस्त्रादि अच्छे नहीं पहिनता, सुगन्धित वस्तुओंको नहीं सूँघता, रूपादिक नही देखता, सुन्दर रागादिक नही सुनता। मात्र अनेक प्रकारके छल-कपटादि मायाचारका व्यवहार करके दूसरोंको ठगनेका कार्य किया करता है इत्यादि प्रकारसे क्रोध-मान-लोभ कषायकी प्रबलता होने पर भोग-

इच्छा गौण हो जाती है तथा रोगाभाव इच्छा मन्द हो जाती है ।

तथा जब भोगइच्छा प्रबल हो जाती है तब अपने पिता आदिको अच्छा नही खिलाता, सुन्दर वस्त्रादि नहीं पहिनाता इत्यादि। स्वयं ही अच्छी—अच्छी मिठाइयां आदि खानेकी इच्छा करता है, खाता है, सुन्दर पतले बहुमूल्य वस्त्रादि पहिनता है और घरके व कुटुम्बी आदि भूखे मरते रहते हैं, इसप्रकार भोगइच्छा प्रबल होने पर मोह–इच्छा गौण हो जाती है।

अच्छा खाने–पहिनने, सूँघने, देखने, सुननेकी इच्छा करता है, वहां कोई बुरा कहे तो भी क्रोध नहीं करता, अपना मानादि न करे तो भी नहीं गिनता, अनेक प्रकारकी मायाचारी करके भी दुःखोंको भोगकर कार्य सिद्ध करना चाहता है तथा भोगइच्छाकी प्राप्तिके लिए धनादि भी खर्च करता है । इसप्रकार भोगइच्छा प्रबल होने पर कषायइच्छा गौण हो जाती है ।

अच्छा खाना, पहिनना, सूंघना, देखना, सुनना आदि कार्य होने पर भी रोगादिका होना तथा भूख–प्यासादि कार्य प्रत्यक्ष उत्पन्न होते जानकर भी उस विषय–सामग्रीसे अरुचि नही होती; जिसप्रकार स्पर्शनइन्द्रियकी प्रबल इच्छाके वश होकर हाथी गड्ढेमें गिरता है, रसनाइन्द्रियके वश होकर मछली जालमे फँस मरती है, घ्राणइन्द्रियके वश होकर भ्रमर कमलमे जीवन दे देता है, मृग कर्णइन्द्रियके वश होकर शिकारीकी गोलीसे मरता है तथा नेत्रइन्द्रियके वश होकर पतगा दीपकमें प्राण दे देता है। इसप्रकार भोगइच्छाके प्रबल होने पर रोगाभाव इच्छा गौण हो जाती है ।

तथा जब रोगाभाव इच्छा प्रबल होती है तब कुटुम्बादिको छोड़ देता है, मन्दिर, मकान, पुत्रादिको भी बेच देता है, इत्यादि रोगकी तीव्रता होने पर मोह पैदा होनेसे कुटुम्बादि सम्बन्धियो से भी मोहका सम्बन्ध छूट जाता है तथा अन्यथा परिणमन करता है । इसप्रकार रोगाभाव इच्छा प्रबल होने पर मोहइच्छा गौण हो जाती है ।

कोई बुरा कहे तथा अपमानादि करे तब भी अनेक छल-पाखण्डकर व धन खर्च करके भी अपने रोगको मिटाना चाहता है। इसप्रकार रोगाभाव इच्छाके प्रबल होनेपर कषायइच्छा गौण हो जाती है।

तथा भूख-तृषा, शीत-गर्मी लगे व पीड़ा इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाये तब अच्छा-बुरा, मीठा-खारा और खाद्य-अखाद्यका भी विचार नहीं करता, खराब अखाद्य वस्तुको खाकर भी रोग मिटाना चाहता है, जैसे पत्थर व झाड़के कांटादि खाकर भी भूख मिटाना चाहता है, इसप्रकार रोगाभाव इच्छा होने पर भोगइच्छा गौण हो जाती है।

इसीप्रकार एक कालमें एक इच्छाकी मुख्यता रहती है और अन्य इच्छाकी गौणता हो जाती है, परन्तु मूलमें इच्छा नामक रोग सदा बना रहता है।

जिनको नवीन-नवीन विषयोंकी इच्छा है उन्हें दुःख स्वभाव ही से होता है यदि दुःख मिट गया हो तो वह नवीन विषयोंके लिए व्यापार किसलिए करे? यही बात श्री प्रवचनसारमें कही है कि:—

* जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जइ तं ण हि सब्भावं वावरो णत्थि विसयत्थं ॥६४॥

(श्री प्रवचनसार अधि० १)

अर्थ:—जिसप्रकार रोगीको एक औषधिके खानेसे आराम हो जाता है तो वह दूसरी औषधिका सेवन किसलिए करे? उसीप्रकार एक विषयसामग्रीके प्राप्त होने पर ही दुःख मिट जाये तो वह दूसरी विषयसामग्री किसलिए चाहे? क्योंकि इच्छा तो रोग है और इच्छा मिटानेका इलाज विषयसामग्री है। अब एक प्रकारकी विषयसामग्रीकी

* अर्थ:—जिन्हें विषयोंमें रति है उन्हें दुःख स्वाभाविक जानो, क्योंकि यदि वह दुःख स्वभाव न हो तो विषयार्थमें व्यापार न हो।

प्राप्तिसे एक प्रकारकी इच्छा रुक जाती है परन्तु तृष्णा–इच्छा नामक रोग तो अन्तरमेसे नहीं मिटता है, इसलिए दूसरी अन्य प्रकारकी इच्छा और उत्पन्न हो जाती है। इसप्रकार सामग्री मिलते-मिलते आयु पूर्ण हो जाती है और इच्छा तो बराबर तबतक निरन्तर बनी रहती है। उसके बाद अन्य पर्याय प्राप्त करते हैं तब उस पर्याय सम्बन्धी वहाँके कार्योंकी नवीन इच्छा उत्पन्न होती है। इसप्रकार संसारमें दुःखी होता हुआ भ्रमण करता है।

तथा अनिष्ट सामग्रीके संयोगके कारणको और इष्ट सामग्रीके वियोगके कारणोंको विघ्न मानते हो, परन्तु आपने कुछ विचार भी किया है? यदि यही विघ्न हो तो मुनि आदि त्यागी तपस्वी तो इन कार्योंको अंगीकार करते हैं, इसलिए विघ्नका मूल कारण अज्ञान–रागादि है, इसप्रकार दुःख व विघ्नका स्वरूप जानो तथा उसका इलाज सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान–चारित्र है और उसके स्वरूपका उपदेश देकर प्रवृत्ति करानेवाले श्री अरिहन्त देवाधिदेव हैं। इसप्रकार दुःख तथा विघ्नका हर्त्ता जानकर वे पूजने योग्य है। कदाचित् तुम उनको विषयसुखका कर्त्ता तथा रोगादि विघ्नोका हर्त्ता मानकर पूजोगे तो यह कार्य तो पूर्वपार्जित कर्मके आधीन है इसलिए तुमको जिनदेवके पूजन पर भी लौकिक दुःख विघ्न आदि असाताके उदयमें होते हैं अब ऐसी दशामे तुमको जिनदेवकी आस्तिक्यता किस प्रयोजनके आश्रयसे स्थिर रहेगी वह बताओ? इसलिए सर्वप्रथम दुःख तथा विघ्नका स्वरूप निश्चय करके फिर इस प्रयोजनके अर्थ पूजने योग्य है, इसप्रकार तुम शास्त्रानुसार गुणका वर्णन करते हो परन्तु तुमको गुणोंका तथा गुणधारक गुणीका सच्चा स्वरूप ज्ञानमें तो निश्चय नहीं हुआ इसलिए प्रथम उसका स्वरूप निश्चय करके सेवक बनना योग्य है।

प्रश्नः—अर्हन्तका सच्चा स्वरूप क्या है वह कहो?

उत्तरः—निश्चयरूप अन्तरग लक्षण तो केवलज्ञान वीतरागता-दिपना है तथा बाह्य लक्षण स्वयं जीवादि पदार्थोंका सच्चा मूल

वक्तापना है सो केवलज्ञान–वीतरागपनेका यह सामर्थ्य है। तथा सच्चा मूल वक्तापना है वह केवलज्ञान–वीतरागपनेका सामर्थ्य है तथा सच्चे मूल वक्तापनेका युक्तिसे, प्रत्यक्षसे और वचनके अविरुद्धपनेसे समर्थन होता है, इसलिए जिनको उनके वचनमें युक्तिसे, प्रत्यक्षसे, अविरुद्धपना सच्चा भासित हुआ है उसीको उनका केवलज्ञानपना—वीतरागता निर्दोष भासित हुआ है, इसप्रकार जानना।

वहाँ; यहाँ सयोगरूप-कार्यरूप साधन जो सत्यवचन उससे सर्वज्ञका स्वरूप निश्चय हुआ है तथा द्रव्यरूप अर्हन्तदेवका स्वरूप परम औदारिक शरीरके धारण करने वाले, अठारह दोषोंसे रहित दिगम्बर, आभूषणादि रहित और शांतमुद्राके धारक इत्यादिरूप हैं।

इति सत्तास्वरूप



सर्वज्ञ सत्तास्वरूप

अब, श्री अर्हन्तदेवका निश्चय अपने ज्ञानमें होनेका उपाय लिखते हैं :—यह जीव अनादिसे मिथ्यादर्शन—अज्ञान—कुचारित्रभावसे प्रवर्तता हुआ चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण करता है। वहाँ कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जो असमानजाति द्रव्य-पर्याय उसमें अहंबुद्धि धारण करके उन्मत्त होता हुआ विषय-कषायादि कार्यरूप प्रवर्तता है। वहां अनादिसे बहुतकाल तो नित्य-निगोद ही में व्यतीत हुआ व पृथ्वी आदि पर्यायोंमें व इतरनिगोदमें व्यतीत हुआ। उस नित्यनिगोद-मेंसे निकलनेके बाद पाँच स्थावरमें उत्कृष्ट रहनेका काल असंख्यात कल्पकाल प्रमाण है, वहाँ तो एक स्पर्शन इन्द्रियका ही किंचित् ज्ञान होता है। अब इन पर्यायोंमें जो दुःख यह जीव भोगता है उन्हें तो जो भोगनेवाला जीव है वही जानता है या केवली भगवान जानते हैं। किसीप्रकारसे कर्मका क्षयोपशम करके तथा त्रस आदि प्रकृतिके उदयसे दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्तिक पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, वहाँ भी विशेषरूपसे दुःखकी ही सामग्री होती है। वहां भी ज्ञान की मन्दता ही है इसीलिए उन पर्यायोमें तो आत्महितकारी धर्मका विचार होनेका भी सर्वथा अभाव है। तथा तिर्यंचपर्याय शेष रही. उसमें छोटी अवगाहनावाले व अल्प आयुवाले जीव तो बहुत है तथा बड़ी अवगाहना और दीर्घ आयुवाले जीव अल्प हैं। उसमें सिंह, बाघ और सर्प आदि क्रूर जीवों में तो धर्मकी वासना नहीं होती और कदाचित् किसी तिर्यंचको यह वासना हो तो बहुधा पूर्वकी देव-मनुष्य पर्यायोंमेंसे धर्मवासनाके बलसे होती है। तथा किसी जीवको लब्धिके बलसे उपदेशादिका निमित्त पाकर वर्तमान तिर्यंच संज्ञीपर्याप्तक गर्भज बड़ी अवगाहना व दीर्घ आयुके धारक बैल और हिरणादि जीवोंको उत्पन्न होती है परन्तु ऐसे जीव बहुत थोड़े हैं।

नरकपर्याय दुःखमय ही है, वहाँ धर्मवासनादिका उत्पन्न होना महादुर्लभ है, किसी जीवको मनुष्य-तिर्यंचपर्यायोंमें हुई वासना किंचित् रह जाये तो वह बनी रहती है।

देवपर्यायमें बहुत देव तो भवनत्रिक अर्थात् भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषियोंमें निचलेपदके धारक हैं उनको तो मिथ्यात्व विषय-कषाय और भोगोपभोग सामग्री आदिका विषयरूपसे अनुराग होता है, इसलिए अनेक जीव तो वहांसे मरकर एकेन्द्रिय होते हैं, तथा कोई उच्चपदके धारक जीव तो प्रथम मनुष्यपर्यायमें धर्म-साधना की है उसके फलसे होते हैं परन्तु ऐसे जीव थोड़े होते हैं।

मनुष्यपर्यायमें अनेक जीव तो लब्ध्यपर्याप्तक है, उनकी श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण आयु है क्योंकि संसारी जीवराशिमें सर्व मनुष्य उनतीस अंक प्रमाण हैं इसलिए एकेन्द्रियादि सर्व जीव राशिसे अत्यन्त अल्प सख्यामात्र हैं। वहाँ भी बहुत जीव तो भोग-भूमिया हैं, इसलिए वहा तो देवादिका तथा धर्मकार्योंका सम्बन्ध ही नहीं है। तथा कर्मभूमिमें अनेक जीव तो गर्भ ही में अल्प आयुके धारक मरते हुये देखे जाते हैं, और कदाचित् गर्भमें पूर्ण अवस्था हो तो जन्म होनेके बाद अनेक जीव अल्प आयुके धारक मरते हुए दिखाई देते हैं तथा कोई दीर्घ आयुको प्राप्त हो तो उच्चकुल प्राप्त करना महा दुर्लभ है। उससे पांच इन्द्रियोंकी पूर्णता व शरीरादि सर्व सामग्री उत्तम प्राप्त करना महा दुर्लभ है, उससे उत्तम संगतिका सम्बन्ध मिलना व व्यसनादिसे बचा रहना महा दुर्लभ है। उससे अन्तरंगमें धर्मवासना होना तथा परलोकके भय और पापसे भयभीत होना उत्तरोत्तर महा दुर्लभ है। कदाचित् उसकी भी प्राप्ति हो जाये तो मिथ्याधर्म वासनाका अभाव तथा उससे बचे रहनेरूप कार्य अत्यन्त दुर्लभ है। तथा उससे भी बच जाये तो जैनाभासी जो श्वेताम्बर-संवेगी, रक्ताम्बर, पीताम्बर, काष्टासंघी इस कलिकालमें उत्पन्न हुई मिथ्याधर्म समान जैनधर्ममें भी प्रतीति उनसे बचना महादुर्लभ है।

यद्यपि उनसे बचना हो जाये तो कुलक्रमसे और पंचायतके भयसे मिथ्यादेवादिसे बचना हो जाये तो महाभाग्य है। परन्तु सच्चे देवादि-की वैसी यथावत् विनयादिरूप प्रवृत्ति नहीं हुई, तथा वहां भी कोई जीव तो अपने ज्ञानमें निर्णय किये बिना ही अज्ञानी साधर्मीके संघ-में मग्न होकर विनय तथा उज्ज्वलता बढ़ानेवाली द्रव्यरूप पूजा तप त्याग आदि बाह्यक्रियामें ही निमग्न होकर रहता है। तथा कुछ जीव वक्ताके उपदेश आदि कथनसे स्वरूपनिर्णय भी करते हैं, वहां अपने ज्ञानमें आगमके आश्रयसे वह शिक्षा याद रखते हैं और अपनेको वस्तु-स्वरूपका ज्ञानी मानकर संतुष्ट हो रहे हैं परन्तु युक्ति-हेतुपूर्वक उसका ज्ञान करते तथा कोई हेतु-युक्ति भी सीख लेता है तो वहाँ आगममें कहा है वैसा ही निश्चय करके वस्तुस्वरूपका निर्णय हुआ मान लेता है परन्तु जिनमतमें आगम-आश्रय-हेतु तथा स्वानुभव बिना किस अपेक्षा अबाध व सबाध है ऐसा निर्णय नहीं करता तथा कोई जीव बाह्यगुणोंसे व्यवहाररूप वस्तुका युक्तिपूर्वक निर्णय भी कर लेता है परन्तु निश्चयाश्रित सच्चा स्वरूप नहीं भासित हुआ इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है।

इसप्रकार इस संसारमें अनन्तानंतकाल परिभ्रमण करते-करते ही व्यतीत हुआ है, इसलिये अब तुम्हे कहते हैं कि:—अब तो इतनी बातोंका अवश्य निर्णय कर लो कि–आगमसे, युक्तिसे तथा स्वानुभवसे संसारमें परिभ्रमण ऐसे ही होता है कि नहीं होता है? तथा संसारमें ऊपर कही हुई सब बातें दुर्लभ है कि नहीं है? अब तुमको अनव्यवसायी रहना योग्य नहीं, यह मनुष्यपर्यायरूपरस प्राप्त करना महा दुर्लभ है, नहीं तो फिर पछताओगे और कुछ गरज सरेगी नहीं। अनन्तानन्त जीव इसीप्रकार दुःखी होते हुए काल व्यतीत करते है, परन्तु अब तुमने इस अवसरको प्राप्त किया है। मनुष्यपर्याय, उच्चकुल, दीर्घआयु, पांचइन्द्रि-योंकी परिपूर्णता सुक्षेत्रमें निवास, सत्संगतिका मिलना, पापसे भयभीत

होना, धर्मबुद्धिका पैदा होना, श्रावककुलकी प्राप्ति, सच्चे शास्त्रका श्रवण, सच्चे उपदेशदाताश्का सम्बन्ध मिलना, सच्चे मार्गका आश्रय मिलना, सच्चे देवादिके निकट दर्शन-पूजन इत्यादिका करना तथा भक्तिरूप व आस्तिक्यतारूप परिणामोंका होना इत्यादि उत्तरोत्तर महादुर्लभ है, सो इसकालमें भी महाभाग्यके उदयसे यह सब बातें प्राप्त हुई है।

अब तुमको पूछते हैं कि:-तुम प्रतिदिन मन्दिरमें आते हो वहाँ तुम मन्दिरजीमे जो प्रतिमाजी विराजमान हैं उसे ही देव जानकर संतुष्ट हो रहे हो कि तुमको प्रतिमाजीका छोटा-बड़ा आकार, वर्ण व पद्मासन-कायोत्सर्गासन आदि ही दिखाई देता है या जिनकी यह प्रतिमा है उनका भी स्वरूप भासित हुआ है? सो तुम अपने चित्तमे विचारकर देखो! यदि भासित नहीं हुआ तो ज्ञान बिना किसका सेवन करते हो? इसलिए तुमको यदि अपना हित करना हो तो सर्व आत्महितका मूल कारण जो 'आप्त' उसका सच्चास्वरूप निर्णय करके ज्ञानमें लाओ। क्योंकि-सर्व जीवोंको सुख प्रिय है, सुख कर्मोंके नाश-से होता है, कर्मका नाश सम्यक्चारित्रसे होता है, सम्यक्चारित्र, सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक होता है। सम्यग्ज्ञान आगमसे होता है, आगम किसी वीतरागपुरुषकी वाणीसे उत्पन्न होता है तथा वाणी किसी वीत-रागपुरुषके आश्रयसे है। इसलिये जो सत्पुरुष है उनको अपने कल्याण-के लिये सर्व सुखका मूल कारण जो आप्त अर्हन्त सर्वज्ञ उनका युक्ति-पूर्वक भले प्रकार सबसे प्रथम निर्णय करके आश्रय लेने योग्य है, कहा है कि :—

* सर्वःप्रेप्सति सत्सुखाप्तिमचिरात् सा सर्वकर्मक्षयात्
सद्वृत्तात्स च तच्च बोधनियतं सोऽप्यागमात् स श्रुतेः।

---

* अर्थ—सर्व जीव सत् सुखकी प्राप्तिको शीघ्र चाहते है, वह प्राप्ति सर्व कर्मके क्षयसे होती है. सर्व कर्मका क्षय चारित्रसे होता है; चारित्र ज्ञानमे नियत है ज्ञान आगमसे होता है आगम यथार्थ उपदेशमेसे

सा चाप्तस्य च सर्वदोषरहितो रागाद्यस्तेऽप्यत-
स्तं युक्त्या सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तः श्रयन्तु श्रियै ।।९।।
(आत्मानुशासन)

इसप्रकार रागादि सर्व दोषरहित जो आप्त, उनका निश्चयपना ज्ञानमें करना। वहां वह तो अज्ञान–रागादि दोषरहित ही हैं, प्रतिमा भी उनकी ही है तथा शास्त्रोंमे निर्बाधरूपसे उनका स्वरूप लिखा ही है, परन्तु अब जिनका उपदेश सुनते है, जिनके कहे हुए मार्गपर चलते है व जिनकी सेवा, पूजा, आस्तिक्यता, जाप्य, स्मरण, स्तोत्र, नमस्कार और ध्यान करते है ऐसे जो अर्हन्त–सर्वज्ञ उनका प्रथम अपने ज्ञानमें स्वरूप तो भासित नही हुआ, तो तुम निश्चय किये बिना किसका सेवन करते हो ? लोकमें भी इसीप्रकार है कि अत्यन्त निष्प्रयोजन बातका भी निर्णय करके प्रवर्तते है तथा आत्महितके मूल आधारभूत जो अर्हन्तदेव उनका निर्णय किये विना ही तुम प्रवर्तते हो यह महान् आश्चर्य है। तथा तुमको निर्णय करने योग्य ज्ञान भी भाग्यसे प्राप्त हुआ है, इसलिए तुम इस अवसरको वृथा मत खोओ। आलस्यादि, छोड़कर उसके निर्णयमे अपनेको लगाओ कि जिससे तुमको वस्तुका स्वरूप जीवादिका स्वरूप, स्व-परका भेदविज्ञान, आत्माका स्वरूप, हेय–उपादेय और शुभ–अशुभ–शुद्ध अवस्थारूप, अपने पद–अपदके स्वरूपका सर्वप्रकारसे यथार्थज्ञान होता है। इसलिये सर्व मनोरथ सिद्ध होनेका उपाय जो अर्हन्त सर्वज्ञका यथार्थज्ञान जिस-प्रकारसे होता है वह प्रथम करने योग्य है। कहा है कि :-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ।।८०।।
(प्रवचनसार)

प्रवर्तता है; [यथार्थ उपदेश आप्तपुरुष द्वारा होता है, और आप्त रागादि सर्व दोषसे रहित है,] इसलिये सत्पुरुष वे सर्व सुखके दातार आप्तको युक्तिसे भलीभांति विचार करके कल्याणके लिए उनका आश्रय करो।

अर्थः—जो द्रव्य-गुण-पर्यायोंसे अर्हन्तको जानता है वही आत्माको यथार्थ जानता है और उसीके मोहका नाश होता है। क्योंकि जो अर्हन्तका स्वरूप है वही अपना स्वरूप है परन्तु विशेषता इतनी है कि वे पहले अशुद्ध थे और रत्नत्रयके साधनसे विभावोंका नाश करके शुद्ध हुए है तथा तुमको रत्नत्रयका साधन नहीं हुआ इसलिए बहिरात्मपना बना रहता है।

इसप्रकार श्रीगुरु परम दयालु हैं इसलिये तुमको इस बातमें चित्त लगानेकी प्रेरणा करते हैं। तुम भी दर्शनादि कार्य तो करते ही हो परन्तु उसमे इतना विशेष करना कि अनध्यवसायी गहली आदत छोड़कर प्रथम निर्णय करके दर्शनादि करो। जिसमें चित्त भी भलीभांति स्थिर हो, सुख भी वर्तमानमें उत्पन्न हो तथा आस्तिक्य बना रहे, तब स्वयं अन्य द्वारा चलित किये जाने पर भी विचलित नहीं होंगे। इसलिए सबसे प्रथम अर्हन्तसर्वज्ञका निर्णय करनेरूप कार्य करना यही श्रीगुरुकी मूल शिक्षा है।

वहां जो जीव, प्रमाण ज्ञान द्वारा अर्हन्त देवका, आगमका सेवन, युक्तिका अवलम्बन, परम्परा गुरुओंका उपदेश तथा स्वानुभवसे निर्णय करके जैन होगा वही मोक्षमार्गरूप सच्चा फल प्राप्त करेगा तथा सातिशय पुण्यबंध करेगा। तथा जो इन बातों द्वारा निर्णय तो नही करे और कुलक्रमसे, व्यवहाररूप व बाह्यगुणोंके आश्रयसे, शास्त्रोंसे सुनकरके उनसे अपना हित होना जानकर तथा पंचायतकी पद्धतिसे उसका सेवक होकर अज्ञान-विनयादिरूप परिणमन करेगा उसे सच्चा निश्चय स्वरूप फल तो नही आयेगा केवल पुण्यबध हो जायेगा। तथा जो कुलादि प्रवृत्ति द्वारा पंचायत पद्धतिसे रोगादि मिटानेके लिये अविनयादिरूप अयथार्थ प्रवर्तता है व लौकिक प्रयोजनकी इच्छापूर्वक यथा-अयथा प्रवर्तते है और आत्मकल्याणका समर्थन करते है उन्हे तो पापबंध ही होता है इसलिये जिनको आत्मकल्याण करना है उनको तो इन दस बातोंके द्वारा निर्णय करके जो सच्चे देव

भासित हो उनमें, आस्तिक्यता लाकर सेवक होना योग्य है। वे दस बातें क्या हैं उन्हें कहते हैं :—१. सत्ता, २. स्वरूप, ३. स्थान, ४. फल, ५. प्रमाण, ६. नय, ७. निक्षेप-संस्थापना, ८. अनुयोग, ९. आकारभेद, तथा १० वर्ण भेद। अब उनका समान्य स्वरूप कहते हैं :—

(१) अन्य कोई कहता है कि अर्हन्त देव नहीं व अपने मनमें ही ऐसा सन्देह उत्पन्न हो जाये तो युक्ति आदिसे व अन्यके उपदेश आदिसे अर्हन्तदेवके अस्तित्वकी श्रद्धा लानेका बल अपने चित्तमें प्राप्त होना अथवा अर्हन्तके अस्तित्वकी स्पष्ट भावना हो जाना उसका नाम सत्तानिश्चय है।

(२) अर्हन्तका बाह्य-अभ्यंतर स्वरूप जैसा है वैसा ही सच्चा निश्चय होना उसका नाम स्वरूपनिश्चय है।

(३) तथा सांख्य, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, नास्तिक, मीमांसक, चार्वाक और जैन इन मतोंमें व वर्तमानकालमें श्वेताम्बर, रक्ताम्बर, पीताम्बर, ढूंढिया और संवेगी आदि जैनाभासोंमें व अन्य भी जितने मत हैं उनमें ऐसा सर्वज्ञदेव किस मतमें होता है? ऐसा सत्य स्थान निर्णय करना वह स्थाननिर्णय है।

(४) ऐसे सत्यदेवके सेवन करनेसे कौनसे फलकी प्राप्ति होगी उसका निर्णय करना वह फलनिश्चय है।

(५) तथा ऐसे देवका निश्चय किस जातिके ज्ञानमें होगा सो निर्णय करना वह प्रमाणनिश्चय है।

(६) तथा भगवानके एक हजार आठ नाम हैं, वे किस नय-की विवक्षासे कहे है, उसका निश्चय करना वह नयनिश्चय है।

(७) तथा भावनाकी अपेक्षा कीजिये कि उनकी प्रतिमाके दर्शन आदि किसलिए किये जाते हैं-किस प्रयोजनसे किये जाते है? उसका निश्चय करना वह संस्थापनानिश्चय है।

(८) प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोगका स्वरूप कहा-कहां कहा है ? उसका निश्चय करना वह अनुयोगनिश्चय है।

(९) तथा मूल भावोंसे प्रतिमाजीका आकार छोटा-बड़ा किसलिये होता है ? उसका निश्चय करना वह आकारनिश्चय है।

(१०) मूल भावोंकी अपेक्षासे प्रतिमाजीका वर्ण और अनेक प्रकारकी काय कैसी होती है ? उसका विचार करना वह वर्णनिश्चय है।

इसप्रकार आपको प्रथम स्वरूपनिश्चय हुआ हो तो प्रतिपक्षीको समझानेका बल रहे तथा अपनी आस्तिक्यबुद्धि भी स्थिर रहे; परन्तु यदि इसप्रकार न हो तो प्रतिपक्षीकी युक्तिका खण्डन भी नहीं कर सकते तथा संशयादि बना रहे तब उसको आस्तिक्यता कहाँ रही ? इसलिए पहले इन बातों द्वारा अवश्य निर्णय करना ही धर्मका मूल है।

अब उनके द्वारा अर्हन्त सर्वज्ञका निश्चय किसप्रकार कर सकते है उसका उपाय दर्शाते है-वहां प्रथम ही सत्तानिश्चय जो अर्हन्तदेव ही हैं ऐसा निश्चय होनेका प्रबंध इसप्रकार कहते है-कोई वादी कहे व अपने मनमें ही संशय उत्पन्न हो कि-तुम सर्वज्ञ कहते हो, परन्तु वह सर्वज्ञ ही नहीं। उसका उत्तर:—यदि तुम सर्वज्ञकी नास्ति कहते हो तो किसतरहसे कहते हो ? तब वह कहता है कि.—मै सर्वज्ञको किस प्रकारसे मानूँ ?—ऐसा कोई प्रमाण भासित नहीं होता कि जिससे सर्वज्ञको जाना जा सके। इसलिये निश्चय बिना वस्तुका सस्थापन करना वह आकाशके फूल समान है। उसका उत्तर:— तुम्हारे अज्ञान-अन्धकारका समूह फैला हुआ है क्योंकि प्रमाणसे सिद्ध जो सर्वज्ञ है वह भी भासित नहीं हुए और तुम नास्तिकपनेका वचन कहते हो। वही श्री श्लोकवार्तिकमें कहा है:—

तत्र नास्त्येव सर्वज्ञो ज्ञापकानुपलंभनात् ।
व्योमांभोजवदित्येतत्तमस्तमविजृंभितम् ।।८।।

(प्रथम अ. पृष्ठ–११)

वहां उसको हम पूछते हैं कि सर्वज्ञको जाननेवाला प्रमाणज्ञान तुमको नही है इसलिये तुम सर्वज्ञकी नास्ति कहते हो? कि अन्यमें सर्वज्ञ नहीं इसलिये कहते हो? कि सर्व मतवालोंमें सर्वज्ञ नहीं है इसलिये कहते हो? तब वह कहता है कि–मुझे नहीं है, क्योंकि मुझे सर्वज्ञ दिखा नहीं, इसलिये नास्ति कहता हूं। तब उसको उत्तर देते हैं कि–तुमको नहीं दिखनेसे सर्वज्ञकी नास्ति कहते हो तो अब जो–जो वस्तुएँ तुमको भासित न हों उन सबकी नास्ति कहो, तब तुम्हारा हेतु सिद्ध होता है। वहां समुद्रमें जल कितने घड़े प्रमाण है? अब उन घड़ोंकी गिनती तुम्हारे ज्ञानमें तो नहीं आई, परन्तु समुद्रमें जल तो संख्याकी मर्यादा सहित अवश्य है, तथा तुमसे बड़े चतुर व ज्ञानीके ज्ञानमें उस समुद्रके जलकी प्रमाणता आई ही होगी कि उसमें इतने घडा प्रमाण जल है। अब इसप्रकार तो तुममे स्वसबधी ज्ञापकानुपलम्भ नामका हेतु–व्यभिचार आया।

जिसप्रकार किसी पुरुषने दिल्ली नही देखी, तो उसके न देखनेसे दिल्लीका अभाव तो नही कहा जा सकता, अर्थात् दिल्ली तो है ही, उसीप्रकार तुमको सर्वज्ञके देखनेका उपाय तो नही भासित हुआ व सर्वज्ञ नही देखा तो तुम अज्ञानी हो, तुमको नही भासनेसे कहीं सर्वज्ञका अभाव तो नही कहा जा सकता, सर्वज्ञ तो हैं ही। इसप्रकार श्री श्लोकवार्तिकमें भी कहा है:—

---

* अर्थ:—जिसप्रकार आकाशके फूलके अस्तित्वको बतलानेवाला कोई प्रमाण प्राप्त न होनेसे आकाशका फूल नही है, उसीप्रकार सर्वज्ञके अस्तित्वको बतलानेवाला कोई प्रमाण प्राप्त न होनेसे सर्वज्ञ भी नही है–ऐसा मानना वह अंधकारके समूहका फैलाव है।

* स्वसंबंधि यदीदं स्याद्व्यभिचारिपयोनिधेः ।
अंभः कुंभादिसंख्यानैः सद्भिरज्ञायमानकैः ।।१४।
(प्रथम अ. पृष्ठ–१३)

तथा जो परसम्बन्धी ज्ञापकानुपलम्भ नामक हेतुको ग्रहण करे अर्थात् पर जो अन्य उसको सर्वज्ञ जाननेका उपाय भासित नहीं हुआ व सर्वज्ञको नही देखा, इसलिये उस परकी अपेक्षासे सर्वज्ञकी नास्ति कहते है। वहाँ उसको पूछते हैं कि तुमसे पर तो हम भी हैं, अब हम कहते हैं कि हमको सर्वज्ञके जाननेका उपायरूप ज्ञान भासित हुआ है, उससे सर्वज्ञको हमने जाना है, इसलिये तुम पर अपेक्षासे सर्वज्ञकी नास्ति किस प्रकार कहते हो? क्योंकि हम तुमको तुम्हारे वचनसे सर्वज्ञका आस्तिक्यतारूप निर्णय करादेंगे और फिर तुम विरुद्ध वचन कहते जाओगे तथा न्याययुक्त जो हमारी सच्ची बात रह जायेगी तो उसमें मतपक्षरूप परस्पर व्याघात होगा। तथा यदि न्यायमें प्रमाण द्वारा उससे सिद्ध नही की जायेगी तो हमारी सिद्धि झूँठी रही, इसलिये हमको जिसप्रकार भासित हुई है उसीप्रकार तुमको प्रमाण द्वारा सिद्ध करा देगें। तब तुमको परसबंधी ज्ञापकानुपलम्भ नामक हेतु सर्वज्ञकी नास्ति साधनेमें झूठा रहा, इसलिये तुमको परकी अपेक्षासे सर्वज्ञकी नास्ति मानना योग्य नही। वही बात श्लोकवार्तिकमें कही है:—

× परोपगमतः सिद्धस्स चेन्नास्तीति गम्यते ।
व्याघातस्तत्प्रमाणत्वेऽन्योन्यं सिद्धो न सोऽन्यथा ।।२७।।
(प्रथम अ. पृष्ठ ४१ फुटनोट)

---

* अर्थः— सर्वज्ञको बतलाने वाला प्रमाण मुझे स्वयंको उपलब्ध नहीं इसलिये सर्वज्ञ नहीं है ऐसा माना जाये तो समुद्रके जलकी (निश्चित) घटसंख्या जो तुझे स्वयंको अज्ञात होने पर भी विद्यमान है उसके साथ व्यभिचार आता है।

× अर्थः— सर्वज्ञको बतलानेवाला प्रमाण परको (मुझसे अन्य व्यक्तिको)

तथा तुम कहोगे कि—जगतमें सर्वको ही सर्वज्ञ देखनेका उपाय भासित नहीं हुआ व सर्वज्ञ दिखाई नहीं दिये इसलिये सर्व सम्बन्धी सर्वज्ञकी नास्ति कहते हैं, उनसे पूछते हैं कि–तुम्हें सबको सर्वज्ञ न दिखनेका निश्चय कैसे हुआ ? तब वह कहता है कि—मैं सबके चित्तका निर्णय करके कहता हूँ, वहां हम कहते हैं कि—जो सबके चित्तको जाने वही सर्वज्ञ, सो तुमने सबके चित्तकी जानी। अब तुम्हारी सबके चित्तको जाननेकी शक्तिकी परीक्षा कर लेंगे। यदि तुम दूर क्षेत्रकी तथा बहुत कालकी बिना देखी स्थूल बात भी बता दोगे तो तुम्हारे सबके चित्तका जानपना सच्चा मान लेंगे। यदि तुमसे दूरक्षेत्रकी तथा बहुत कालकी बात बताई नहीं जा सकती तो तुमको सर्वके चित्तका ज्ञान हुआ है ऐसा किसप्रकार माने ? तथा जो हुआ है तो तुम्हारा सर्व सम्बन्धी ज्ञापकानुपलम्भ नामक हेतु जो सदोष हुआ। कहते हैं कि—

* सर्वसम्बन्धि तद्बोद्धु किंचिद्बोधैर्न शक्यते।
सर्वबोद्धास्तिचेत्कश्चित्तद्बोद्धा किं निषिध्यते ॥१५॥
(श्लोकवार्तिक प्रथम अं. पृष्ठ १४)

उपलब्ध नही, इसलिये सर्वज्ञ नहीं है ऐसा कारण दिया जाये तो तुमसे अन्य व्यक्ति तो मैं भी हूँ कि जिसे सर्वज्ञको जाननेवाला प्रमाण उपलब्ध है, इसप्रकार अन्य व्यक्तियोंकी मान्यतामें परस्पर व्याघात होनेके कारण अन्य व्यक्तिकी मान्यता द्वारा भी सर्वज्ञका अभाव नहीं होता।

* अर्थ:—यदि सर्वज्ञके अस्तित्वको बतलानेवाला प्रमाण सबको प्राप्त नहीं है—ऐसा कहो तो वह सर्व संबंधी जानना अल्पज्ञानसे नहीं हो सकता; तथा यदि वह सर्व संबंधी जानना हो सकता है तो फिर कोई सर्वज्ञ हो सकता है इस बातका निषेध क्यों किया जाता है ?

इसप्रकार तुम्हारे सर्वसम्बन्धि-ज्ञापकानुपलम्भ नामके हेतुको झूठ ठहराया। तब वह कहता है कि—सो तो जाना परन्तु परसबंधि ज्ञापकानुपलम्भ तो तब झूठा होगा जब तुमको जिसप्रकारके प्रमाण द्वारा सर्वज्ञका अस्तित्व भासित हुआ है, उसप्रकारसे हमको भी दर्शाओ। जब हमको अस्तित्वका सच्चा निश्चय हो जायेगा तब हम किसलिये—परसर्वविज्ञापकानुपलम्भ नामक हेतुको सच्चा मानेंगे? वह तो सहज ही अपने आप झूठा हो जायेगा। तब उसको कहते हैं कि:—यदि तुमको सर्वज्ञके अस्तित्वका निश्चय करनेकी अभिलाषा है तो तुम्हे जो अप्रमाणका चश्मा लग रहा है उसको उतारकर प्रमाणका चश्मा लगाओ, क्योंकि अप्रमाणज्ञानमें वस्तुका सच्चा निर्णय सर्वथा नही होता, परन्तु प्रमाण ज्ञानसे ही यथार्थ निर्णय होना कहा है। शास्त्रमें वही कहा है कि—

* **प्रमाणादिष्टसंसिद्धिरन्यथातिप्रसंगतः।**

(प्रमाणपरीक्षा पृष्ठ ६३)

अर्थात् प्रमाणसे ही अपने इष्टकी भले प्रकार सिद्धि होती है तथा जो ऐसा न माने तो प्रमाण और अप्रमाणका विभाग न रहे और इसमें सबको इष्टकी सच्ची सिद्धि होनेसे अतिप्रसंग नामका दूषण आता है। इसलिये वस्तुकी सच्ची सिद्धि प्रमाणसे ही होना मानकर अप्रमाणका चश्मा दूर करने योग्य है। तब उसने कहा कि—मुझे अप्रमाण ज्ञानका स्वरूप बताओ कि जिसको जानकर मैं दूर करूं। तब उसको उत्तर देते हैं कि:—

जिस ज्ञान द्वारा वस्तुका स्वरूप अयथार्थ भासित हो उस ज्ञानका नाम ही अप्रमाणज्ञान है। उसके तीन भेद हैं—संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय। वहाँ वस्तुके निर्णय करनेमें सच्चा लक्षणका आश्रय

* अर्थ.—प्रमाणसे ही इष्टकी भले प्रकार सिद्धि होती है। अन्य प्रकारसे (अनिष्टकी भी सिद्धि होनेसे) अतिप्रसंग दोष आयेगा।

तो न आये और सपक्ष तथा परपक्षमें नियत जो साधारण धर्म उनके आश्रयसे निर्णय करे, तो वहां दोनों पक्ष प्रबल भासित होंगे तब शिथिल अर्थाङ्कित होकर दुतरफा ज्ञानका रहना उसका नाम संशयज्ञान है।

तथा विपरीत अर्थात् उलटे लक्षणके आश्रयसे वस्तुके स्वरूपका निर्णय करना अर्थात् अन्यथा गुणोंमें यथार्थबुद्धि करनी उसका नाम विपर्ययज्ञान है। तथा ज्ञेय ज्ञानमें तो आवे परन्तु फिर अभिप्राय, स्वरूप इत्यादिका निर्णय न करना उसका नाम अनध्यवसाय ज्ञान है। ऐसे दोषसहित ज्ञान द्वारा वस्तुका सच्चा निश्चय नही होता।

तब वह कहता है कि:—सर्व वस्तुओंका सच्चा स्वरूप तो केवलज्ञान बिना सर्वथा भासित नही होता; तो केवली बिना सर्वका ज्ञान क्या मिथ्या ही है? उसका उत्तर श्री श्लोकवार्तिकमें इसप्रकार कहा है कि:—

*** मिथ्याज्ञानं प्रमाणं न, सम्यगित्यधिकारतः ॥३८॥**

(प्रथम अ. पृष्ठ-१७०)

मिथ्याज्ञान तो सर्वथा प्रमाण नही है, क्योंकि शास्त्रोंमें तो सम्यक्ज्ञानकी ही प्रमाणता कही है। वहां जिस प्रकरणमें जिस जातिके ज्ञेयके ज्ञानको विघ्न न हो उस प्रमाणके प्रकरणमें उसप्रकार उस ज्ञेयके ज्ञानको सम्यक्ज्ञान ही कहते हैं। क्योंकि मिथ्याज्ञानसे तो कार्यसिद्धि नही होती, इसलिये एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक सर्व जीवोंके अपने-अपने इष्टका साधकरूप सम्यक्ज्ञान होता है, इसलिये केवलज्ञान बिना सर्वज्ञान मिथ्या ही है, ऐसा कहना योग्य नही। अपने-अपने प्रकरणमें अपने-अपने ज्ञेय संबंधि सच्चे ज्ञातृत्वका अल्प व विशेष ज्ञान सर्वको पाया जाता है, क्योंकि लौकिक कार्य तो सर्व जीव यथार्थ ही करते

---

* अर्थ:—सम्यग्ज्ञान प्रमाण है ऐसा (शास्त्रमें) अधिकार होनेसे मिथ्याज्ञान प्रमाण नही है (ऐसा सिद्ध होता है। केवलज्ञानके अतिरिक्त अन्य ज्ञान अप्रमाण है ऐसा नहीं)।

हैं, इसलिये लौकिक सम्यग्ज्ञान तो सर्व जीवोंके अल्प या अधिक बना ही रहता है, परन्तु मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत जो आप्तआगम आदि पदार्थ उनका सच्चा ज्ञान सम्यक्दृष्टिको ही होता है तथा सर्वज्ञेयका ज्ञान केवल भगवानको ही है, ऐसा जानना।

तथा लौकिक कार्योंमें भी जहाँ संशय–आदि तीनों ज्ञान आते हैं वहाँ लौकिक कार्य भी बिगाडते ही हैं। इसलिये जो तुमको सर्वज्ञकी सत्ता आदिके सच्चे निर्णयका अभिप्राय है तो अपने ज्ञानमेंसे तीनों दोषोंको दूर कर अपने ज्ञानको प्रमाणरूप करो, तब वह कहते हैं कि:—त्रिदोषरहित प्रमाणज्ञानके कितने भेद हैं व हमको कौन ज्ञान होने योग्य है व इस प्रकरणमें किस भेदका प्रयोजन होगा सो कहो। उसका उत्तर :—

प्रमाणज्ञानके १३ भेद है, केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, अवधि-ज्ञान, स्पर्शन–रसना–घ्राण–चक्षु तथा श्रोत्रज्ञान, स्मृतिज्ञान, प्रत्यभिज्ञान, तर्कज्ञान, अनुमानज्ञान तथा आगमज्ञान आदि। तब वह कहते है कि :—उनका स्वरूप क्या है ? वह सामान्यरूपसे यहां कहनेमें आता है तथा विशेषरूपसे प्रमाण निर्णयमें लिखेंगे।

(१) वहाँ लोकमें रहनेवाले जो सर्व द्रव्य और अलोकाकाश उनको त्रिकालवर्ती अनन्त गुण–पर्यायों सहित व एक कालमे यथावत् जाने उसका नाम केवलज्ञान है।

(२) सरलरूप तथा वक्ररूप चिंतवन करने पर जीवके चिंतवनको जाने उस ज्ञानका नाम मनःपर्ययज्ञान है।

(३) मूर्तिक पुद्गलोंके स्कंधको व सूक्ष्म-परमाणुओंको एक-कालमें एक ज्ञेयको उसके द्रव्य, क्षेत्र, कालकी मर्यादा सहित स्पष्ट जाने उसका नाम अवधिज्ञान है।

(४) मन और पाँच इन्द्रियोंसे जो ज्ञान होता है उसको सांव्यवहारिक ज्ञान कहते हैं वह पुद्गलके अनन्तानन्त परमाणुओंके बादर

स्कन्धको अपने-अपने विषयकी मर्यादासहित एक कालमें एक ज्ञेयको किंचित् स्पष्टरूप जानता है, वहाँ स्पर्शन इन्द्रिय तो अपने आठ विषयोंको जानती है।

(५) रसना इन्द्रिय, पांचों रसोंको जानती है।

(६) घ्राण इन्द्रिय, सुगन्ध-दुर्गन्धरूप जो दो प्रकारकी गन्ध है उसको जानती है।

(७) नेत्र इन्द्रिय, पाँच प्रकारके वर्णोंको जानती है।

(८) श्रोत्र इन्द्रिय, सात प्रकारके स्वरोंको जानती है।

(९) अब पाँच परोक्षज्ञानके भेदोंको कहते हैं। वहाँ पूर्वमें जानी हुई वस्तुका स्मरण होना वह स्मृतिज्ञान है।

(१०) पूर्वमें जानी हुई वस्तुका वर्तमानमें जाने हुए ज्ञेयसे दोनों कालकी सदृश्यता पूर्वक सन्धिरूप जो ज्ञान हुआ उसका नाम प्रत्यभिज्ञान है।

(११) साध्य-साधनकी व्याप्ति अर्थात् यह साध्य, इस साधन-से सिद्ध होगा परन्तु अन्य प्रकारसे सिद्ध नहीं होगा—ऐसे नियमरूप सहचारीपनेको जानना उसका नाम तर्क प्रमाण है।

(१२) चार दोषोंसे रहित साधनसे साध्यको जानना, जहाँ साध्य तो असिद्ध साधनगम्य न हो, वहाँ गम्यमान साधन जो तर्क उससे निश्चय किया गया हो उसके द्वारा असिद्ध साध्यको जानना उसका नाम अनुमान प्रमाण है।

(१३) प्रत्यक्ष-अनुमान अगोचर वस्तुका केवली सर्वज्ञके वचन आश्रयसे ही पदार्थका निर्णय करना वह आगम प्रमाण है।

वहाँ इस समय इस दुःषम पंचमकालमें केवलज्ञान, मन.पर्यय-ज्ञान तथा अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान तो इस क्षेत्रमें नहीं हैं तथा पाँच इन्द्रियज्ञानमें सर्वज्ञका स्वरूप ग्रहणमें नहीं आता. मात्र नेत्रसे उसकी

प्रतिमाजीका वर्ण व आकार व आसनादि तो दिखाई देते हैं परन्तु जो सर्वज्ञका सत्तास्वरूप ज्ञान, वह तो नियमसे नहीं जाना जा सकता। तथा मनमें स्मृतिप्रमाण तो तब होता है कि जब पूर्वमें जाना हो तो याद आवे, परन्तु जिसको पूर्वमें उसका ज्ञान नहीं हुआ उसके स्मृति-प्रमाण किसप्रकार उत्पन्न होगा ? तथा पूर्वमें प्रथम जाना हो उसको वर्तमानमें सपक्ष-विपक्ष द्वारा जानकर सदृश्यता-विसदृश्यताका जोड़-रूप ज्ञान हो, परन्तु जिसने पूर्वमें सर्वज्ञको नहीं जाना व वर्तमानमें नहीं जाना और सन्धिरूप ज्ञान जिसको नहीं हुआ उसको प्रत्यभि-ज्ञान किसप्रकार हो सकता है ? तथा आगम प्रमाणमें तो सर्वज्ञ-वचनके आश्रयसे वस्तुका स्वरूप जान लेता है, परन्तु जिनमतमें तो यह आम्नाय नहीं है, जिनमतमें तो यह आम्नाय है कि वस्तुके नामादिक और लक्षणादिक तो आगमके श्रवण द्वारा ही जाने, फिर मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत जो आप्त-आगमपदार्थादिक उनके स्वरूपको तो आगमसे ही सुनकर प्रतीतिमें ले, उनका तो प्रत्यक्ष अनुमान द्वारा निर्णयसे आगममें कथन है, वह सच्चा मानना अब मूल प्रयोजनभूत वस्तु जो अर्हन्त सर्वज्ञ उनको आगमके सुननेसे ही प्रतीतिमें लेकर जो संतोष मान लेता है वह भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है। क्योंकि अर्हन्त सर्वज्ञका निश्चय होनेमें आगमप्रमाणका अधिकार नहीं है। सो ही कहा है कि:—

* प्रत्यक्षानुमानागमैः परीक्षणमत्र विचारः।

(श्लोकवार्तिक पृष्ठ—८ पंक्ति—१३)

अर्थः—प्रत्यक्ष-अनुमानके आश्रयसहित आगममें लिखी हुई प्रयोजनभूत वस्तुकी परीक्षा करनी उसका नाम विचार है। जो सर्वज्ञका स्वरूप है वह तो मूल प्रयोजनभूत वस्तु है, इसलिए केवल आगमके आश्रयमें ही उसकी प्रतीति किये बिना परीक्षा करनेसे

* अर्थः—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमसे परीक्षा करना उसका नाम यहाँ विचार कहा है।

+'नय द्वारा ही केवल प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।' अतः यदि सर्वज्ञदेवका निश्चय करना है तो पहले उनके नाम–लक्षणादि आगमसे सुनकर फिर अनुमानसे निश्चय करना योग्य है। वह किसप्रकार करे सो कहते हैं:—प्रथम तो प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, प्रमीति उनका स्वरूप भलीभांति जानकर तुमको सर्वज्ञका निर्णय करना इष्ट है।

अब तुम प्रमाता बनो। वहाँ तेरह प्रमाणोंमें पाँच इन्द्रियज्ञान तथा पाँच परोक्ष प्रमाण ये दस प्रमाण तो तुम्हारे पाये जाते हैं, लौकिक कार्योंमें तो तुम उनको यथास्थान लगाकर कार्यसिद्धि कर लेते हो, परन्तु अब यदि तुमको सर्वज्ञका निश्चय करना है तो अनुमान प्रमाणरूप अपने ज्ञानको बनाओ तथा तुम प्रमाता बनकर अपने प्रमाणरूप ज्ञानको सर्वज्ञके निर्णयके प्रति लगाओ कि जिससे सच्चा निर्णय हो। यहाँ अनुमान प्रमाणसे सर्वज्ञका निश्चय होता है, इसलिए अनुमान प्रमाणका स्वरूप समझकर अपने ज्ञानको प्रमाणरूप बनाओ। वहाँ प्रथम साध्य–साधनकी व्याप्तिका ज्ञान जो तर्क प्रमाण वह पहले होना चाहिए, क्योंकि उसके होते ही सच्चा अनुमान होता है। वहाँ पहले साधनके स्वरूपका निर्णय करना चाहिए। वहाँ साधनका मूलस्वरूप तो इसप्रकार है :—

जिसके द्वारा साध्य सिद्ध हो और अन्य प्रकार सिद्ध न हो उसका नाम साधन है। उसके अनेक भेद हैं:—१ पररूप, २ संयोगरूप, ३. लक्षणरूप, ४. पूर्वचररूप, ५. उत्तरचररूप, ६ सहचररूप, ७. कर्त्तारूप, ८. कर्मरूप, ९ कारणरूप १०. संप्रदानरूप ११. अपादानरूप, १२. अधिकरणरूप, १३. सम्बन्धरूप, १४. क्रियारूप, १५. स्वामीरूप, १६. स्वरूपरूप, १७. द्रव्यरूप १८. क्षेत्ररूप, १९. कालरूप, २०. भावरूप, इत्यादि साधनके अनेक भेद हैं। सो इतनेका तो कुछ स्वरूप लिखते हैं :—

+ (खरडा प्रतिमें) 'नियमकरि प्रयोजन सिद्ध न होय'।

(१) भिन्नपरद्रव्यसे परद्रव्यका निश्चय करना, जैसे मन्दिरके चित्र देखकर, यह मन्दिर बनवानेवाला बहुत धनी और रुचिवान था। ऐसा निश्चय करना, यहाँ मन्दिरसे उस बनवानेवाले पुरुषका निश्चय हुआ, वह पररूप हेतु है।

(२) एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध जो परद्रव्य उससे निश्चय करना वह संयोगरूप हेतु है, जैसे किसी मूर्तिकी प्रसन्न मुद्रा देखकर अन्तरंग प्रसन्नताका ज्ञान होना वह संयोगरूप हेतु है।

(३) लक्षणको देखकर वस्तुका निश्चय करना जैसे चेतना लक्षणको देख चैतन्यजीवका निश्चय करना वह लक्षण हेतु है।

(४) साध्यसे प्रथम होनेरूप कर्मको देखकर साध्यका निश्चय करना वह पूर्वचर हेतु है; जैसे कृत्तिका का उदय देखकर रोहिणीका निश्चय करना, वह पूर्वचर हेतु है।

(५) साध्यके पश्चात् होनेवाले हेतुको देखकर साध्यका निश्चय करना, जैसे रोहिणीका उदय देखकर कृत्तिका नक्षत्र हो जानेका निश्चय करना, वह उत्तरचर हेतु है।

(६) जो साध्यके साथ ही साथ हो उसको देखकर साध्यका निश्चय करना जैसे प्रकाशको देखकर सूर्योदयका निश्चय करना सो सहचर हेतु है।

(७) कर्त्ताके साधनसे साध्यभूत कार्यका निश्चय करना; जैसे बिना स्वाद लिये ही लड्डूके अच्छेपनका हलवाईके नामसे निश्चय करना कि यह लड्डू अमुक हलवाईके बनाये हुए हैं इसलिए अच्छे हैं, सो कर्त्तारूप हेतु है।

(८) कार्यरूप हेतुको साधन द्वारा कर्त्तारूप साध्यका निश्चय करना, जैसे अच्छे कपड़ेके थानको देखकर उसके बुननेवाले कारीगरका निश्चय करना सो कार्यरूप हेतु है।

(९) करणको साधनकर उसके द्वारा होने वाले कार्यरूप साध्य का निश्चय करना, जैसे किसीके बुरे भावोंको देखकर यह कहना कि यह पुरुष नरकमें जायेगा, सो करणरूप हेतु है।

(१०) सम्प्रदानको साधन करके निश्चय करना वह संप्रदान-रूप हेतु है, जैसे रसोई बनानेवाले रसोइयासे पूछना कि यह रसोई किसके लिए किस क्रियासे बनाते हो? तब उसने किसी क्रियाको बता दिया उससे ऐसा निश्चय हुआ कि-यह रसोई स्वच्छतासे बनी है, उसका नाम सम्प्रदान हेतु है।

(११) अपादानको साधनकर साध्यका निश्चय करना, जैसे कोई लड़ाई करके घर जाता था, उसको देखकर निश्चय करना कि यह घर पर जाकर लड़ेगा, उसको अपादानरूप हेतु कहते है।

(१२) आधारको देखकर आधेयका निश्चय करना, जैसे कोई बढ़िया खेतका नाम सुनकर उसमें पैदा होने वाले चावलोंके अच्छेपनका निश्चय करना इत्यादि, वह आधाररूप साधन है।

(१३) सम्बन्धको साधन करके निश्चय करना जैसे बुरे संबधके द्वारा ऐसा निश्चय करना कि—यह वस्तु खाने योग्य नही है, या इस पुरुषका बुरे मनुष्योंसे सम्बन्ध है, इसलिए यह व्यसनी है, इत्यादि सम्बन्धरूप साधन है।

(१४) कार्यकी प्रारम्भरूप क्रिया द्वारा कार्यकी भलाई या बुराई का निश्चय करना जैसे वीणादिकी बाजनेरूप क्रियासे गानेरूप कार्यका निश्चय करना, वह क्रियारूप साधन है।

(१५) स्वामीरूप साधन द्वारा वस्तुका निश्चय करना, जैसे मुनियोंको यद्यपि भोजनका शुद्ध-अशुद्धपनेका निश्चय नहीं आया तो भी जैन श्रावकका घर पहिचानकर श्रावकके घर आहार करते है। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि भोजनकी शुद्धताका निर्णय किये बिना

मुनि आहार किसप्रकार करेंगे ? जिनदेवका निश्चय है तथा जिनदेव ही जिनके स्वामी है उनके वहा आहार अशुद्ध नहीं होगा। इसप्रकार स्वामीरूप साधन है।

(१६) स्वरूपसाधन द्वारा वस्तुका निर्णय करना जैसे किसीके पुत्रको सुन्दर कपडा बहुमूल्य आभूषण पहने हुए देखकर व उदारतापूर्वक धन व्यय करते हुए देखकर यह निश्चय करना कि ये भाग्यवान पिताका पुत्र है, उसको स्वरूपसाधन हेतु कहते हैं।

(१७) द्रव्यरूप साधन द्वारा वस्तुका निर्णय करना जैसे ये लड्डू सर्वथा अच्छे नही हो सकते, क्योंकि इनमे खराब शक्कर डाली गई है, वह द्रव्यरूप साधन है।

(१८) क्षेत्र द्वारा वस्तुका निश्चय करना जैसे अमुक बढ़िया क्षेत्रमे यह धान पैदा हुआ है इसलिये यह धान बढ़िया है, इसप्रकार क्षेत्ररूप साधन है।

(१६) काल द्वारा वस्तुका निर्णय करना वह कालरूप साधन है।

(२०) भाव द्वारा वस्तुका निश्चय करना वह भावरूप साधन है।

इसप्रकार साधनोंका स्वरूप कहा, वह तो असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक तथा अकिंचित्कररूप चार दूषणोंसे रहित–जिससे साध्य निश्चयसे अवश्य सिद्ध हो ही और जिसके बिना सिद्ध नहीं हो वह साधन है, उससे विपरीत साधन पतितरूप है। ऐसे साधन व दृष्टान्त ग्रहण करना वह तर्क प्रमाण है।

तथा साध्य जो गम्य न हो परन्तु साधन द्वारा गम्य हो उससे साधनके साध्यका निश्चय करना वह अनुमान प्रमाण है। उस अनुमान प्रमाणके स्वार्थानुमान तथा परार्थानुमानरूप दो भेद है। वहाँ प्रमाणके अनुमानरूप परिणमित होना हुआ ज्ञानका नाम स्वार्थानुमान है, उसके तीन अङ्ग हैं — धर्मी साध्य तथा साधन। उनका ज्ञान होने पर

स्वार्थानुमान होता है। वहाँ जिस वस्तुमें साध्यपना हो उसको धर्मी कहते हैं और वह प्रसिद्ध ही है। तथा शक्य, अभिप्रेत, अप्रसिद्ध, ऐसे तीन लक्षणोंको धारण किया हो वह साध्य है। जो प्रमाणताके निर्णय होने योग्य हो वह शक्य है, जो प्रमाताको इष्ट हो और प्रमाताका अंतरंग अभिप्राय जानकर, ठीक (निर्णय) करने योग्य हो वह अभिप्रेत है तथा जो प्रगट न हो वह अप्रसिद्ध है। इसप्रकार तीन लक्षण जिसमें हो वह साध्य है।

जिससे साध्यका ज्ञान हो तथा अन्य प्रकारसे न हो वह साधन है। वहाँ अपने ज्ञानमें साधनके बलसे धर्ममें साध्यका निश्चय करना वह स्वार्थानुमान है तथा अन्यको अपने वचन द्वारा अनुमानका स्वरूप कहना व अनुमान द्वारा सिद्ध करने योग्य वाक्य अन्यको कहना वह परार्थानुमान है।

वहाँ पंडितोंके सम्बन्धमें दो अंग अंगीकार करने योग्य हैं, प्रतिज्ञा और हेतु। वहा साध्यसहित धर्मीका वचन है वह प्रतिज्ञा है। जैसे-यह पर्वत अग्नि संयुक्त है। तथा जिससे धर्मीमें साध्यका दृढ़-निश्चय हो जाये ऐसा जो साधनका वचन वह हेतु है; जैसे इस पर्वतमें धूम्र पाया जाता है इसलिये यह पर्वत अग्निमान है। तथा अल्पज्ञानवालेको दो अंग तो यह तथा उदाहरण, उपनय और निगमन-मेसे एक, दो व तीन शिष्यके अनुरोधसे कहना। वहाँ जिस साध्यको स्वयं साधन देकर सच्चा निर्णय चाहे उसके दृष्टान्तका वचन कहना अन्वय व व्यतिरेकरूप दो उदाहरण हैं। जैसे पर्वतको अग्निमान सिद्ध करनेके लिए अग्नि सहित धुएँवाले रसोईघरका दृष्टांत वचन कहना। तथा दृष्टांतकी अपेक्षा पूर्वक साध्यका वचन कहना वह उपनय है। जैसे-यह रसोईघर धुएँवाला है, वैसे पर्वत भी धूम्रवान है। तथा हेतु-के आश्रयमें साध्यका निश्चयवचन कहना वह निगमन है। जैसे यह पर्वत धूम्रवान है इसलिए अग्निमान ही है। ऐसे हेतु पूर्वक निश्चय-वचन कहना वह निगमन है। इसप्रकार तुमको अनुमानका स्वरूप व

भेद कहा उसको जानकर अपने ज्ञानको अनुमानरूप प्रमाण बनाओ।

अब हमको सर्वज्ञकी सत्ताका निश्चय जिसप्रकार हुआ है वह स्वरूप तुमको कहते हैं उसे तुम रुचिपूर्वक सुनो। उसके निश्चय करनेका मार्ग यह है :–सो न्यायशास्त्रमें कहा है कि–उद्देश, लक्षण-निर्देश तथा परीक्षा इसप्रकार वस्तुका निर्णय अनुक्रमसे तीन प्रकारसे करते हैं। वहा वस्तुका नाम मात्र कहना सो उद्देश है, उसे तो प्रथम कहना चाहिये, क्योंकि नाम कहे बिना किसका लक्षण कह सकते है? इसलिए प्रथम नाम ही कहना–सीखना योग्य है, पश्चात् अव्याप्ति, अतिव्याप्ति तथा असंभव इन त्रिदोष रहित लक्षण जिससे कि वस्तुका स्वरूप भिन्न भासित होता है उसको कहना व जानना। क्योंकि लक्षण कहे व जाने बिना परीक्षा किसमे करें? इसलिये नामके पश्चात् लक्षण कहना व जानना योग्य है, उसके पश्चात् लक्षणका आश्रय लेकर परीक्षा करना योग्य है। वहाँ वादी-प्रतिवादी अनेक प्रकारकी विरुद्ध युक्ति कहे उनकी प्रबलता व शिथिलताका निश्चय करनेके लिए प्रवर्तित जो विचार वह परीक्षा है। क्योंकि ऐसी परीक्षा बिना वस्तुके सच्चे स्वरूपकी जानकारी तथा यथार्थ त्याग–ग्रहण नहीं होता। लौकिक व शास्त्रमे ऐसे ही वस्तुके विवेचनकी मर्यादा है। अब तुम्हें सर्वज्ञकी सत्ता-असत्ताका निश्चय करना आया, वहाँ प्रथम तो नाम सिखो, फिर अनेक मतोंके आश्रयसे लक्षणादि करो। फिर सर्व मतोंमें कहे हुए जो लक्षण उनका परस्पर निर्णय करो। उसके पश्चात् तुमको प्रबलरूपसे जो सच्चा भासित हो उस पर दृढ निश्चय लाना योग्य है, यह मार्ग है। यदि कोई कहे कि:–सर्वज्ञ नहीं है, तो उसके कथनको तो प्रथम ही ज्ञापकानुपलम्भ हेतुको तो असत्य दर्शाया ही था, अब फिर उसको पूछते है कि:–तुम सर्वज्ञकी नास्ति कहते हो तो वह किसी क्षेत्र किसी कालकी अपेक्षासे कहते हो तो यह तो हम भी मानते है, परन्तु यदि तुम सर्व क्षेत्र सर्वकालकी अपेक्षासे सर्वथा नास्ति कहोगे तो तुमको हम कहेंगे कि–जो सर्वथा अभावरूप हो उसकी वस्तुसंज्ञा कैसे आयेगी? व उसकी नामसंज्ञा भी नियमसे नही

प्रवर्तेगी; तुम सर्वज्ञकी अस्तिपूर्वक विधिरूप वाक्य तो नहीं कहते, परन्तु तुम तो ऐसा कहते हो कि सर्वज्ञ नहीं हैं। अब तुमने सर्वज्ञका सर्वथा अभाव माना तो सर्वज्ञकी संज्ञा किसके आश्रयसे प्रवर्तेगी ? न्यायशास्त्र-में तो ऐसी मर्यादा है कि :–जो सर्वथा अभावरूप हो उसकी संज्ञा नहीं होती है। जिसप्रकार कोई नास्तिरूप वचन कहता है कि–आकाशका फूल नहीं है, तो वहाँ यह आया कि वृक्षको तो फूल है। उसीप्रकार तुम लौकिक दृष्टान्त दो कि जिसका सर्वथा अभाव हो उसकी विधि व निषेधमें संज्ञा चली हो; परन्तु लौकिकमें तो ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है, इसलिए सर्वथा अभावकी नामसंज्ञा सर्वथा नहीं होती। इसलिए तुम सर्वज्ञ ऐसा वचन कहकर फिर उसकी नास्तिरूप वचन कहते हो, सो यह बात असंभव है। श्री देवागमस्तोत्रमे भी ऐसा ही कहा है कि :—

*** संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥२७॥**

(आप्तमीमांसा)

अर्थ:—जिसकी सज्ञारूप प्रतिषेधकी वाक्यरूप संज्ञा कही जाये वह वाक्य कथंचित् सद्भावरूप जिस संज्ञाका स्वामी प्रनिषेध्यपदार्थ, उसके आश्रय विना नही प्रवर्तती। इसलिये जो वस्तु कथचित् अस्तिरूप होगी उसीकी नास्तिकी कथनी कथंचित् सम्भवित होगी परन्तु सर्वथा अभावरूप की संज्ञा लेकर नास्तिकी कथनी सर्वथा ही नहीं बनती। उसीप्रकार सर्वज्ञका नाम लेकर नास्ति कही, परन्तु सर्वज्ञ ऐसी नाम संज्ञा तो सर्वज्ञकी कथचित् अस्तिताको सिद्ध करती है इसलिए हम तो तुम्हारे पास सर्वज्ञका अस्तित्व सिद्ध करते हैं कि तुम सर्वज्ञका नाम लेकर नास्ति कहते हो परन्तु उसमें तो ऐसा आया कि सर्वज्ञका सद्-भाव किसी प्रकारसे है ही और तभी सर्वज्ञकी संज्ञा बनती है। इस-प्रकार संज्ञाके स्वामीका प्रतिषेध ही अपनी प्रतिषेध्य वस्तुकी सिद्धि करता है।

---

* अर्थ:—संज्ञावानका (नामवाले पदार्थका) निषेध, निषेध्य (निषेध करने योग्य पदार्थ) बिना कभी नही होता है।

तथा तुम कहोगे कि—हमने तो सर्वज्ञकी नास्तिका वचन कहा है और अस्तिक्यवादी सर्वज्ञको अस्ति मानते हैं। उस अभिप्रायका खण्डन करनेके लिए कहा है उसको हम कहते हैं कि यदि सर्वज्ञ नहीं हैं ऐसा बाधा सहित वचन तो नहीं कहना था और कहना था तो सर्वज्ञवादी ऐसा मानते हैं परन्तु उसका श्रद्धान झूठा है इसप्रकारसे कहना चाहिए था, इसलिए उसका तो परस्पर वादके द्वारा निर्णय हो जाता परन्तु तुमको ऐसी असम्भव बात बिना विचारे कहना योग्य नहीं थी कि सर्वज्ञ नहीं हैं। यह तो तुमने झूठे मतपक्ष द्वारा ही वचन कहा है परन्तु आस्तिक्यवादी तो तुम्हारे नास्तिरूप वचनको ही साधन रूप बनाकर सर्वज्ञके अस्तित्वकी पुष्टि करते हैं। इसप्रकार तुम्हारे वचनसे ही हमने अपनी वस्तु सर्वज्ञके अस्तित्वकी सिद्धि की।

तथा हमने जिस साधन द्वारा अनुमानसे सर्वज्ञकी सत्ता स्वीकार की है वह तुमको दर्शाते हैं—यहाँ चार प्रकारके अनुमानसे सर्वज्ञकी सत्ताका निश्चय होना बतलायेंगे। एक तो एकदेश आवरणकी हानिका साधन करना, दूसरा थोड़ा-बहुत ज्ञेय किसी को प्रत्यक्ष है उसका साधन करना, तीसरा सूक्ष्मादि पदार्थका साधन करना, चौथा सूक्ष्मादि पदार्थरूप जो उपदेश वाक्य उसका साधन करना। इसप्रकार चार प्रकारके साधन है। अब उनका विशेष व इन साधनोंके आश्रयसे किसप्रकार सर्वज्ञका अनुमान करें वह यहाँ लिखते हैं:—

वहाँ दोष तथा आवरणकी हानि किसी जीवको सम्पूर्ण हुई है, क्योंकि संसारमें ज्ञानकी विशेषता तथा कषायकी मन्दता उत्तरोत्तर बढ़ती-बढ़ती देखनेमें आती है, उससे इस सर्वज्ञताकी सिद्धिकी। जैसे-गुड़से खांड, खांडसे बूरा, बूरेसे मिश्री अधिक-अधिक मीठी है। उसको जानकर स्वजाति एकदेश गुणकी उत्तरोत्तर वृद्धिके साधनसे अमृतके सम्पूर्ण मीठेपनका निश्चय करते हैं, अथवा बाह्याभ्यन्तर कारणों द्वारा एकदेश दोषकी हानिके साधनसे किसीके सम्पूर्ण दोषकी हानि साधन द्वारा सिद्ध करते हैं। इसप्रकार एकदेशरूप बानगीसे सर्वदेश बात-

का निश्चय करना यह भी एक अनुमानकी जाति है। श्री देवागम-स्तोत्रमें भी कहा है कि :—

× दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात् ।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥४॥

(आप्तमीमांसा)

यहाँ जीवोंके एकदेश आवरण व रागादिक हानि उत्तरोत्तर वृद्धि-वृद्धिरूप होती जानकर साधनमें किसीको सम्पूर्ण भी आवरण व रागादिककी हानि हुई है—इसप्रकार अनुमानसे सिद्ध किया ।

तथा जो-जो ज्ञेय अनुमेय अर्थात् अनुमानमें आने योग्य है वे नियमसे किसीको प्रत्यक्ष गोचर अवश्य होते ही हैं। जैसे अग्नि आदि हैं उन्हें अनुमानसे भी जानते हैं और कोई प्रत्यक्ष भी जान लेता है; उसीप्रकार ज्ञेय अनुमेय है उनका प्रत्यक्ष होनेके लिए दृष्टान्तसे यह अनुमान साधा। सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्तीपदार्थ हेतु अनुमेय है, इसलिए वे किसीको प्रत्यक्ष हैं ही। जिनको प्रत्यक्ष हैं सो ही सर्वज्ञ है। इसप्रकार अनुमान दृष्टान्तसे सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध की। श्री देवागमस्तोत्रमें भी कहा है कि :—

* सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षा कस्यचिद्यथा ।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥५॥

(आप्तमीमांसा)

× अर्थ.—जिसप्रकार जीवोंको दोष और आवरणकी कमी होती है उसीप्रकार अपने-अपने कारणसे बाह्य और आंतरिक मलका (अर्थात् आवरण और दोषका) संपूर्ण क्षय अतिशायन हेतुसे (घटते-घटते सर्वथा नाश हो इस हेतुसे) सिद्ध होता है ।

* अर्थ।—जिसप्रकार अग्नि आदि पदार्थ अनुमानका विषय होनेसे किसीको वे प्रत्यक्ष होते है, उसीप्रकार सूक्ष्म, अन्तरित (काल अपेक्षासे अन्तर पड़ा

अर्थः—जो सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ हैं वे किसीको प्रत्यक्ष होते हैं। उसका दृष्टान्त जैसे-अग्नि अनुमेय है और उसको कोई प्रत्यक्ष देख ही लेता है। इसप्रकार दूसरा अनुमान सिद्ध किया है।

तथा जो ज्ञेयपदार्थ हैं तो उनका ज्ञाता भी कोई है ही, क्योंकि ज्ञेय जो मेरु आदि व जीव आदि शास्त्रमें सुनकर बिना देखे ही किसीके कहे हुए वचनोंके आश्रयसे श्रुतज्ञान द्वारा जानते हैं। जैसे सूक्ष्म आदि पदार्थ अपनेको प्रत्यक्ष जाननेमें नहीं आये तो भी किसीके द्वारा कहे हुए शास्त्रोंसे निर्बाध श्रुतज्ञानसे जाननेमें आते हैं, इसलिए अनुमानसे यह निश्चय सिद्ध किया कि जो यह जीव आदि वस्तुएं है तो उनका सम्पूर्ण स्पष्ट ज्ञाता भी कोई है, इसप्रकार तीसरी जातिका अनुमान सिद्ध किया।

तथा सूक्ष्मादि पदार्थोंका जो उपदेश करता है वह सूक्ष्मआदि पदार्थोंका कोई साक्षात् जाननेवाला है उसके आश्रयसे ही प्रवर्त्ता है क्योंकि सुनिश्चितासम्भवद्बाधक प्रमाणोंके लिए उपदेश विद्यमान है, वहाँ हम यह अनुमान सिद्ध करते हैं कि जो यह उपदेश है तो उसका मूल वक्ता सर्वज्ञ-वीतराग ही है। इसप्रकार पर स्वरूप कार्यानुमानसे सर्वज्ञकी सत्ता सिद्धकी। श्री श्लोकवार्तिकमें कहा है कि :—

* सूक्ष्माद्यर्थोपदेशो हि तत्साक्षात्कर्तृपूर्वकः।
परोपदेशलिंगाक्षानपेक्षावितथत्वतः ॥ ९ ॥

(प्रथम अ. पृष्ठ-१-१)

जैसे कोई पुरुष भीतर बैठकर वीणा बजाता था, वहां किसी

हो ऐसे) तथा दूर पदार्थ भी अनुमानके विषय होनेसे किसीको प्रत्यक्ष होते हैं, इसप्रकार सर्वज्ञकी सिद्धि होती है।

* अर्थः—सूक्ष्मादि पदार्थोंका उपदेश उन पदार्थोंको साक्षात् (प्रत्यक्ष) जाननेवालेके द्वारा ही हो सकता है क्योंकि वह (सूक्ष्मादि पदार्थोंका ज्ञान) परोपदेश, लिंग और इन्द्रियोंसे निरपेक्ष है तथा सत्य है।

दूसरे पुरुषने तो उसको साक्षात् देखा नहीं, परंतु बीनका बाजा यथावत् सुनकर उसने ऐसा निश्चय किया कि–यहाँ कोई चतुर बाजा बजानेवाला है; उसीप्रकार यहाँ भी सर्वज्ञको साक्षात् प्रत्यक्ष तो नहीं देखा, परन्तु इस सच्चे उपदेशरूप साधनसे सर्वज्ञकी समानरूप सत्ता सिद्ध की। तथा ऐसे सर्वज्ञका निमित्त पाया जाता है, वह निर्णय स्थान निश्चयमें लिखेंगे। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि–जो अनादिनिधनश्रुत है वही है, उसे जो पढ़े-सुने उसको ज्ञान हो जाता है, इससे सर्वज्ञ वक्ता कैसे सिद्ध किया? उसका उत्तर :—

यद्यपि पदार्थभी अनादिनिधन है तथा वस्तुओंमें नामादिक कहना भी अनादिनिधन है, सो कर्त्ता तो इनका कोई सर्वथा है नहीं, परंतु प्रथम तो न्यायशास्त्रोंमें वचन सामान्यका भी पौरुषेयपना सिद्ध किया है और अपौरुषेय आम्नायका निषेध किया है। क्योंकि यह उपदेशरूप वाक्य किसी पुरुषके आश्रय बिना नहीं प्रवर्तता। शब्द पुद्गलकी पर्याय है, सो जीवके आश्रय बिना ही प्रवर्तती है। श्री श्लोकवार्तिकमें भी कहा है कि :—

* नैकांताकृत्रिमाम्नायमूलत्वेस्य प्रमाणता।
तद्व्याख्यातुरसर्वज्ञे रागित्वे विप्रलंभनात् ॥४॥
(प्रथम अ. पृष्ठ–७)

यद्यपि तुम सर्वथा अकृत्रिम आम्नाय कहते हो, परन्तु उसकी प्रमाणता नहीं है। इसलिए इस आम्नायका मूल व्याख्याता मानना योग्य है। तथा जो अज्ञानी–राग–द्वेषीको व्याख्याता माना जाय तो उसके कहनेमें प्रमाणता किसप्रकार आयेगी? क्योंकि दोषवान वक्ताको तो ढोंगी कहते हैं, इसलिए पूर्ण ज्ञानी तथा राग–द्वेषरहित ही मूल व्याख्याता होने पर आम्नायकी सच्ची प्रवृत्ति होगी, वही बतलाते हैं।

---

* अर्थ:—सर्वथा अकृत्रिम परम्परासे आनेके कारण भी वेदमें प्रामाणिकता आ नहीं सकती; क्योंकि उसके व्याख्याता असर्वज्ञ और राग–द्वेषी होनेसे वचनका संभव आता है।

यदि तुम सर्वथा अकृत्रिम आम्नाय पुरुषके आश्रय बिना ही मानोगे तो आम्नाय तो अकृत्रिम सम्भव है, क्योंकि ऐसा वचन है कि:—

+'सिद्धो वर्णः समाम्नायः'

अर्थात् अक्षरोंकी सच्ची आम्नाय है वह स्वयंसिद्ध है, परन्तु किसीकी की हुई नहीं है, तो अक्षर वा जीवादिक वस्तुके नाम षट्-द्रव्यसे सब स्वयंसिद्ध है. इसलिए आम्नाय तो अकृत्रिम ही है तो भी पुरुष किसी पुरुषके आश्रय विना आम्नाय वचन ही अपने स्वार्थको प्रकाशनेमें समर्थ नहीं है। जिस वचनमें ही ऐसी शक्ति हो कि पढ़े—सुने उनको उसरूप सच्चा ज्ञान करा देवे तो अनेक मतोंमें भी अन्यथा व एक मतमें भी प्रतिपक्षीका सद्भाव क्यों होने दे ? इसलिए आम्नाय-के प्रवर्त्तनको सच्चा रखनेवाला कोई वचनका व्याख्याता अवश्य मानना योग्य है।

वहाँ यदि व्याख्याता सर्वज्ञ वीतराग मानोगे तो आम्नायरूप वचन है सो उनके आधीन प्रवर्त्ता है; परन्तु तुम अकृत्रिम आम्नायकी ऐसी एकान्त हठ पकड़कर सर्वज्ञकी नास्ति किसलिये कहते हो ? तथा यदि आम्नायरूप वचनका व्याख्याता मन्द ज्ञानी–रागीद्वेषी मानोगे तो उसके वचनमें प्रमाणता नहीं आयेगी ऐसे वक्ताके कहे हुए सूत्रमें प्रमाणता कैसी आयेगी ? क्योंकि अज्ञान द्वारा तो वस्तुका स्वरूप यथार्थ भासित नहीं होता, तब या तो इच्छानुसार वचनको जैसा वस्तुका स्वरूप अन्यथा भासित हो वैसा कहकर पद्धति रखे, अथवा अपनेसे कहा न जाये व कहनेमें बाधा लगती दिखे तो वस्तुका स्वरूप अवक्तव्य कहकर पद्धति रखे। इसप्रकार तो अज्ञानी वक्ताके आश्रयमें दोष आता है, और यदि कदाचित् किसीको किंचित् ज्ञान हो तो भी राग–द्वेषके वशसे व अपना विषय–कषाय, काम, क्रोध, मान

+ अर्थ:—वर्ण उच्चारका संप्रदाय, (चौंसठ मूलाक्षर) स्वयंसिद्ध है अनादि—निधन है।

माया, लोभ तथा इर्ष्यादिक प्रयोजन साधनेके लिए सच्चेको झूठा कहे उसका प्रमाण नहीं। इसप्रकार राग-द्वेषके आश्रयसे दोष आता है, अब जिनको दोनोंमें सामान्य-विशेषता हो उनको भी सच्चा वक्तापना आना दुर्लभ है तो जिनमें अज्ञान-रागादि दोष प्रबल पाये जाते हों उनको सच्चा वक्तापना किसप्रकार आयेगा ? इसलिये अज्ञानी तथा रागीद्वेषी वक्ता सर्वथा नहीं होता।

तथा तुम जो हठग्राहीपनेसे व मतपक्षसे दोषवान व्याख्याताके भी प्रमाणिकपना मानोगे तो तुम्हारे मतमें अदुष्टकारणजन्यपनेको प्रमाण स्वरूप क्यों कहा है ? तुम्हारेमें ऐसा वाक्य ही है कि:—

'दुष्टकारणजन्यत्वं प्रमाणस्याप्रमाणत्वम्'

यदि कोई द्वेषी ठहरे तब उसकी कही हुई आम्नाय प्रमाण-रूप कैसे हो ? क्योंकि उसकी कही हुई आम्नायको तो दुष्टकारण-जन्यपना आया। जैसे इसकालमें कपटियोंके शास्त्र दुष्ट-द्वेषी वक्ताजन्य है, उसीप्रकार आम्नायके भी शास्त्र हुए। इसप्रकार अकृत्रिम आम्नाय माननेमें व अज्ञानी रागीद्वेषी वक्ताको माननेमें अनेक बाधायें आती है, उसका विशेष निर्णय महाभाष्य अष्टसहस्री तथा श्लोकवार्तिक आदि न्यायके ग्रन्थोंमें हेतु-युक्तिपूर्वक किया है, उसको जानकर अपने कल्पित वचन प्रमाणभूत नहीं हैं, ऐसा मानना योग्य है।

तथा सच्चे वस्तुस्वरूपका व जीवके कल्याणमार्गका प्रतिपादन करनेवाला वचन है वह श्री सर्वज्ञ-वीतराग वक्ताके कहनेसे ही प्रवर्ता है, यह बात सिद्ध हुई। सो ही श्री श्लोकवार्तिकमें कहा है कि:—

= प्रबुद्धाशेषतत्त्वार्थे साक्षात् प्रक्षीणकल्मषे।
सिद्धे मुनीन्द्रसंस्तुत्ये मोक्षमार्गस्य नेतरि ॥२॥

---

* अर्थ:—द्वेषके कारण प्रमाणको भी अप्रमाणपना उत्पन्न होता है।

= अर्थ:—समस्त तत्त्वार्थोंके ज्ञाता वीतराग और मुनीन्द्रोंसे स्तुत्य ऐसे

सत्यां तत्प्रतिपित्सायामुपयोगात्मकात्मनः ।
श्रेयसा योक्ष्यमाणस्य प्रवृत्तं सूत्रमादिमम् ।।३।।

(प्रथम अ. पृष्ठ-४)

अर्थ:—जिसने सर्वपदार्थोंको जाना है, तथा जिसने घातिया-कर्मोंका घात किया है, और मुनिन्द्रों की स्तुति करने योग्य, मोक्षमार्गको दिखलानेवाले ऐसे वक्ताके सिद्ध होते ही कल्याणकारी जुड़ान करनेवाला जो उपयोगस्वरूप आत्मा और उसकी प्रतिपित्सा अर्थात् पूछनेरूप प्रवृत्ति उसके होने पर यह सूत्र प्रवर्ता है। सो जिनमतके शास्त्रोंमें युक्ति-सहित सत्यपना पाया जाता है क्योंकि जिनमतमें सूत्रका लक्षण यह कहा गया है कि:—

*** 'हेतुमत्तथ्यं सूत्रम्'**

सो ऐसे सूत्र असर्वज्ञ-द्वेषवान वक्ता होते कैसे प्रवर्ते ? जैसे वृहस्पति आदि नास्तिवादीके सूत्र सच्चे वक्ता बिना ही प्रवर्ते है वैसे जिनमतके सूत्र नहीं है। जिनशास्त्रोंके वचनमें तो सुनिश्चितासंभव-द्बाधकपना है, इसलिये वे तो सत्यताको सिद्ध करते हैं और सत्यता है वह इन वचनोंके सूत्रपनेको प्रगट करती है, तथा सूत्रपना है वह सर्वज्ञ-वीतरागके प्रणेतापनको सिद्ध करता है।

अब इस कालमें सच्चा वस्तुस्वरूप दर्शानेवाले सच्चे मोक्ष-मार्गके सूत्र तो पाये ही जाते है, परन्तु जिनके ज्ञानमें जिनवचनोंके आगमका सेवन, युक्तिका अवलम्बन, परम्परा गुरुका उपदेश तथा स्वानुभव इनके द्वारा प्रमाण, नय निक्षेप और अनुयोगसे निश्चय हुआ

मोक्षमार्गके नेताकी (आप्तकी) सिद्धि होनेपर श्रेयमें जुड़नेकी योग्यतावाले उपयोगात्मक आत्माको मोक्षमार्गकी जिज्ञासा होनेपर तत्त्वार्थसूत्रका प्रथमसूत्र (सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः) प्रवर्ता है।

* अर्थ—युक्तिवाला और यथातथ्य (सच्चा) हो वह सूत्र कहलाता है।

उन्हीं जीवोंको इन वचनोंका सत्यपना भासित होता है तथा उन्हींके ये वचन सच्चे सूत्ररूप भासित होते हैं और उन्हींको ऐसे सूत्रोंका कहनेवाला वक्ता सर्वज्ञ-वीतरागदेव ही भासित होता है। इसप्रकार जो भेदविज्ञानी जीव हैं उन्हींको जहाँ केवलीका प्रत्यक्ष दर्शन है वहाँ तो सयोगके कार्यरूप साधन द्वारा सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध हुई है।

तथा इसकालमें केवलज्ञानीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं परन्तु उनकी तदाकार व अतदाकार स्थापनाके दर्शन हैं, वहाँ पररूपकार्यके साधनसे सत्ताकी सिद्धि होती है। इसप्रकार जो सर्वज्ञकी सर्वथा नास्ति कहते हैं उसको सर्वज्ञकी सत्ता जिसप्रकार सिद्ध हुई है उस प्रकार सत्ता सिद्ध करनेका उपाय दर्शाया है। अब जिनको आत्मकल्याण करना है उनको प्रथम ऐसे न्यायसे वचनका सत्यपना अपने ज्ञानमें निर्णय करके फिर गम्यमान हुए सत्यरूप साधनके बलसे उत्पन्न हुआ जो अनुमान उससे सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करके श्रद्धान, ज्ञान, दर्शन, पूजा, भक्ति, स्तोत्र, नमस्कार आदि करने योग्य हैं।

परन्तु जो सत्ताका निश्चय तो नहीं करता और कुलपद्धतिसे पंचायतके आश्रयसे व मिथ्याधर्मबुद्धिसे दर्शन-पूजनादिरूप प्रवर्तता है व मतपक्षके हठग्राहीपनेसे अन्यको नहीं भी मानता, मात्र उन्हींका सेवक बन रहा है, उसको तो नियमसे अपने आत्मकल्याणरूप कार्यकी सिद्धि नहीं होती; इसलिए वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है क्योंकि जिनसे सर्वज्ञकी सत्ताका ही निश्चय नही किया गया, उनसे स्वरूपका निश्चयादि तो किसप्रकार होगा?

यहाँ कोई कहता है कि:—सत्ताका निश्चय हमसे न हुआ तो क्या हुआ वे देव तो सच्चे हैं इसलिए पूजनादि करना विफल थोड़े ही जाता है? उसका उत्तर:—यदि तुम्हारी किंचित् मंदकषायरूप परिणति हो जायेगी तो पुण्यबंध तो होता जायेगा, परन्तु जिनमतमें तो देवके दर्शनसे आत्मदर्शनरूप फल होना कहा है वह तो नियमसे सर्वज्ञकी सत्ता जाननेसे ही होगा अन्य प्रकारसे नहीं होगा। यही श्री

प्रवचनसारमें कहा है। तथा तुम लौकिक कार्योंमें तो ऐसे चतुर हो कि वस्तुके सत्तादि निश्चय किये बिना सर्वथा नही प्रवर्तते; तथा यहाँ तुम सत्ता निश्चय भी न करो पागल, अनध्यवसायी होकर प्रवर्तते हो सो यह बड़ा आश्चर्य है। इसलिये श्लोकवार्तिकमें कहा है कि:—

'कथमनिश्चितसत्ताकः स्तुत्यः प्रेक्षावतां'...आदि

अर्थ:—जिसके सत्ताका निश्चय नहीं हुआ वह परीक्षावाला किसप्रकार स्तवन करने योग्य है? इसलिये तुम सर्व कार्योंसे पहले अपने ज्ञानमें सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करो यही सर्व धर्मका मूल है, तथा यही जिनमतकी आम्नाय है। यहाँ कोई प्रश्न करता है कि:—धर्म, अधर्मके उपायसहित हेयोपादेयतत्त्व ही किसीको प्रत्यक्ष है ऐसा तो कहना और सकल पदार्थ प्रत्यक्ष हैं ऐसा नही कहना। उसको उत्तर देते हैं कि:—तुमने यह प्रश्न किया सो ऐसा नही है। क्योंकि सकल पदार्थ प्रत्यक्ष हैं ऐसा न हो तो धर्म, अधर्म, हेय, उपादेय तत्त्वका भी प्रत्यक्षपना नही बनता। तथा जो उपचारसे सकलपदार्थ प्रत्यक्ष कहोगे तो तुमने महिमाके लिये यह बात कही, परन्तु उसमें यह गुण तो सच्चा नही आया, तब झूठे मतवालों जैसा कहना हुआ। क्योंकि यह नियम है कि जिसको सकलपदार्थ सच्चे प्रत्यक्ष न हुए उसको किसी वस्तुकी प्रमाणता नही।

तथा वह कहता है कि–जैसे सर्वज्ञवादी कहता है कि–मुझ जैसे किंचित् ज्ञानीको सर्वज्ञका श्रद्धान अनुमानद्वारा जिसप्रकार भासित हुआ है उसीप्रकार सर्वज्ञके ज्ञाता पहले हुए हैं वर्तमानमें हैं तथा भविष्यमें होंगे। ऐसा कहनेवाले उस सर्वज्ञवादीसे हम ऐसा कहेंगे कि मुझ किंचित् ज्ञानीको जैसा सर्वज्ञका सद्भाव नहीं भासित हुआ उसी प्रकार पूर्वमें भी सर्वज्ञकी सत्ताका सद्भाव किसीको भासित नही होता तथा भविष्यमें किसीको भासित नहीं होगा; क्योंकि–जैसे हम कायवान पुरुष हैं उसीप्रकार अन्य हैं, हममें और दूसरोंमें अन्तर क्या है?

सो यह बात अयुक्त है, क्योंकि–सर्वज्ञका अभाव साधनेके लिए आपका नुपलम्भ नामका हेतु दिया था उसको तो हमने झूठा सिद्ध कर ही दिया है। तथा सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध होनेका उपाय तुमको करना है तो स्याद्वादके कहे अनुसार हमने अनुमान सिद्ध करके चित्त लगाया है उसी प्रकार तुम भी चित्त लगाओ तो सर्वज्ञकी सत्ता अवश्य ही भासेगी। तथा तुमने यह हेतु दिया कि जैसे मैं मनुष्य हूं उसीप्रकार स्याद्वादी मनुष्य है, हमको तो नहीं भासित हुआ और स्याद्वादीको भासित हुआ तो ऐसी स्याद्वादमें क्या विशेषता है ? यह हेतु तुमने असत्य दिया है, क्योंकि जगतमें मनुष्य शरीरवान तो सर्व ही एक जातिके हैं, परन्तु उनमें इतना अन्तर तो आज भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई मूर्ख है, किसीको हीरा–मोती इत्यादि वस्तुओंके मूल्यका ज्ञान है, किसीको नहीं है, किसीको सराफीका ज्ञान है, किसीको बजाजीका ज्ञान है, किसीको शास्त्रोंका ज्ञान है, किसीको रोगका ज्ञान है, किसीको नहीं है। कोई दुष्टबुद्धि है, किसीको धर्मबुद्धि है, तथा किसीको पापबुद्धि है; इसीप्रकार तुमको सर्वज्ञका सद्भाव नहीं भासित हुआ और स्याद्वादीको भासित हुआ, तो इसमें विरोध कहाँ आया ?

एक यह बात है कि–तुमको स्याद्वादीके सर्वज्ञका सद्भाव भासनेकी परीक्षा करनी है तो तुम उनको पूछो और फिर उनको स्वार्थानुमानद्वारा सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध हुई होगी तो वे तुमको परार्थानुमानद्वारा सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करा देंगे। यदि तुम उनसे चतुर होकर निर्णय करनेके अर्थी होकर पूछोगे, और उनसे हेतुके आश्रयसे सच्ची सिद्धि न करायी जायेगी तो वे नियमसे स्याद्वादी ही नहीं हैं। जैसे अन्य लौकिक अज्ञानी जीव हैं वैसा उन्हें भी जानना। जिसप्रकार लौकिक जीव विषय–कषायादिकके कार्योंमें पर्यायबुद्धिरूप हैं, उनमें मग्न होकर विचक्षण हो रहे हैं उसीप्रकार यह झूठे स्याद्वादी कहलाकर बुद्धिरूप जो पूजा, दान, तप–त्यागादि उनमें मग्न होकर धर्मात्मा बन रहे हैं। इसलिये तुम यह नियमसे जानो कि जिनको

सर्वज्ञकी सत्ताका निश्चय नियमसे हुआ होगा वही स्याद्वादी है, इसलिए नरत्व, कायमानपना आदि हेतु देकर स्याद्वादीको सर्वज्ञकी सत्ताका सद्भाव भासनेका निषेध है सो असंभव है। श्री श्लोकवार्तिक-में भी कहा है कि:—

* आसन् संति भविष्यंति बोद्धारो विश्वदृश्वनः ।
मदन्येपीति निर्णीतिर्यथा सर्वज्ञवादिनः ॥२६॥
किंचिज्ज्ञस्यापि तद्वन्मे तैनैवेति विनिश्चयः ।
इत्ययुक्तमशेषज्ञसाधनोपायसंभवात् ॥ २७ ॥
× यथाहमनुमानादेः सर्वज्ञं वेद्मि तत्त्वतः ।
तथान्येपि नराः संतस्तद्बोद्धारो निरंकुशाः ॥२८॥

(प्रथम अ. पृष्ठ १४-१५)

इत्यादि सर्व जिनमतकी निर्बलता दिखलाई सो यह अवस्था तो जैनाभासी जिनको मतका, आम्नायका, वस्तुओंका स्वरूप व स्व-परके कल्याणका ज्ञान तो नहीं हुआ हो और कुलादिक व पंचायत आदिके आश्रयसे पूजा-तप त्यागादिरूप प्रवर्तते हैं तथा जैन कहलाते उनके ही है। क्योंकि विशेषज्ञान न हो तथापि जो मोक्षमार्गकी प्रयोजनभूत वस्तु है उसका ज्ञान तो निर्णयरूप-हेतुपूर्वक होना चाहिए।

---

* अर्थ।—जिसप्रकार स्वयं अल्पज्ञ होनेपर भी सर्वज्ञवादीके निर्णय है कि 'मेरे अतिरिक्त अन्य भी सर्वज्ञको जाननेवाले भूतकालमें हुए हैं, वर्तमान कालमें हैं और भविष्य काल होंगे,' उसीप्रकार मुझे भी इसीप्रकार 'सर्वज्ञ नहीं है' ऐसा त्रिकाल निश्चय हो सकता है—ऐसा (तेरा) कहना अयुक्त क्योंकि सर्वज्ञको सिद्ध करनेवाले प्रमाण विद्यमान हैं।

× अर्थः—जिसप्रकार मैं अनुमानादिसे सर्वज्ञको वास्तविकरूपसे जानता हूँ, उसीप्रकार अन्य मनुष्य भी सर्वज्ञको जानने वाले हों, उसमें कुछ भी आपत्ति नहीं है।

क्योंकि सच्चे जैनो होंगे वे प्रयोजनभूत वस्तु में अन्य द्वारा बाधा सर्वथा नहीं आने देंगे, तथा बाधा देखकर अपने को तलाकपना (छोड़ देने का भाव) नहीं आता, और जो स्वयं सबका मन रंजायमान करने के लिए मंदकषायी–शीतल बनकर ही रहता है और चर्चा करके उसकी बाधा का खंडन न करे तो वह जैनाभासी मिथ्यादृष्टि ही है। क्योंकि जो जैन होंगे सो अपने कानों से जिनमत की बाधा के वचन कैसे सह सकेंगे ? वही श्री श्लोकवार्तिक में कहा है कि :—

'प्रतीतिविलोपो हि स्याद्वादिभिर्न क्षमं सोढु" ।

अर्थ :—जो स्याद्वादी है उनसे अपनो प्रतीति अर्थात् श्रद्धान उसका विलोप अर्थात् अन्योक्ति से सदूषणपना नहीं सहा जाता; क्योंकि दूषणसहित सदोषश्रद्धान होने के पश्चात् निर्दोष–दूषणरहित श्रद्धान का आश्रय नहीं होता।

इति सर्वज्ञसत्ता स्वरूप सम्पूर्णम्।



हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

			रु० पै०
१	समयसार		१८ – ००
२	प्रवचनसार		२० – ००
३	नियमसार		१० – ००
४	पचास्तिकायसग्रह		१० – ००
५	समयसार नाटक		१० – ००
६	मोक्षमार्गप्रकाशक		८ – ००
७	प्रवचनरत्नाकर भाग १ या २ या ३ या ४ या ५		१० – ००
८	आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पच परमागम		५ – ००
९	ज्ञानगोष्ठी		६ – ००
१०	भक्तामर प्रवचन		४ – ५०
११	श्रावकधर्मप्रकाश		५ – ५०
१२	चिद्विलास		२ – ५०
१३	पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व		११ – ००
१४	सिद्धचक्र विधान		६ – ००
१५	बारह भावना एक अनुशीलन		५ – ००
१६	अहिंसा महावीर की दृष्टि म (हिन्दी, अग्रेजी)		१ – २५
१७	जिनवरस्य नयचक्रम्	साधारण	४ – ००
१८	क्रमबद्धपर्याय (हिन्दी, गु , म , क , त)	साधारण	३ – ००
१९	धर्म के दशलक्षण (हि , गु म , क , त अ)	साधारण	४ – ००
२०	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ (हि , गु म , क , अ)		६ – ००
२१	सत्य की खोज [कथानक] (हि , गु म क त)	साधारण	४ – ००
२२	मैं कौन हूँ ?		१ – २५
२३	परमार्थवचनिका प्रवचन		२ – ००
२४	अद्वितीय चक्षु		१ – ००
२५	लघु जनसिद्धान्त प्रवेशिका		१ – ००
२६	छहढाला (सचित्र)		३ – ००
२७	बृहद् जिनवाणी सग्रह		१६ – ००
२८	वीर हिमाचल तैं निकसी		१ – ००
२९	जिनेन्द्र अर्चना (पूजन सग्रह)		४ – ५०
३०	चौसठ ऋद्धिविधान		२ – ५०
३१	चैतन्य चमत्कार		१ – ००
३२	गोम्मटेश्वर बाहुबली		० – ४०
३३	बालबोध पाठमाला भाग १ (हि , गु , म , क , त)		० – ७०
३४	बालबोध पाठमाला भाग २ या ३ (हि , गु , म , क , त)		१ – ००
३५	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १ (हि , गु , म)		१ – ००
३६	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग २ या ३ (हि , गु)		१ – २५
३७	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ (हिन्दी, गुजराती)		१ – २५
३८	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ (हिन्दी, गुजराती)		१ – ४०
३९	महावीर वदना या मैं ज्ञानानद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		० – ५०